सस्ता साहित्य मण्डल
सर्वोदय साहित्य माला : अस्सीवाँ ग्रन्थ

[लोक साहित्य माला : तीसरी पुस्तक]

[८० : ३]

संतवाणी

प्रस्तावना
आचार्य काका कालेलकर

वियोगी हरि

सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली
शाखा : लखनऊ

प्रकाशक,
मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री,
सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली

संस्करण
दिसम्बर १९३८ : २०००
मूल्य
आठ आना

मुद्रक,
एस. एन. भारती,
हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस,
नई दिल्ली

प्रस्तावना

जबकि आज देश में धर्म-धर्म के बीच झगडे बढ रहे है और चन्द लोग यहाँतक कहने लगे है कि धर्म-मजहब की बलाये ही न रहे तो अच्छा, 'सन्त-वाणी' का यह संग्रह देखकर अत्यन्त आनन्द और सन्तोष होता है। दावानल चारो ओर भडक रहा हो और बीच मे वर्षा हो रही हो, तब जैसा सन्तोष होता है वैसा ही असर 'सन्तवाणी' का देश के सन्तप्त हृदय पर पडता है। लडाई-झगडे होते है धर्म के मिथ्या अभिमान से, धर्म के नाम पर चलाये जानेवाले स्वार्थ, मत्सर और द्वेष से, अथवा अज्ञान के कारण वास्तविक भाव को छोडकर शब्दो को दिये हुए महत्व से। सन्त कहते हैं—धर्म कोई घर का पशु तो है नही, कि जिसका पालन-पोषण बाह्यरूप से किया जा सकता हो। धर्म तो जीवन-परिवर्तन है, नई दृष्टि का प्राप्त करना है। धर्म एक विशिष्ट कोटि का जीवन है। उस जीवन का जिन्होने प्रत्यक्ष परिचय पा लिया उनके मन मे बाह्य सिद्धान्तो के झगड़े गौण हो जाते है। पहुँचे हुओ की तो 'एक ही बात' होती है। "सब साधो का एक मत, बिच के बारह बाट।"

जब देश में धर्म-अधर्म के लड़ाई-झगड़े बढ़ गये, तब इन सन्तोंनें अनेक रूपो से अवतार ले लेकर धर्म का हार्द ढूंढ निकाला और लोगो को दिया। सन्तों में सबको सम्हालने की समन्वयकारी वृत्ति थी; परस्पर स्वार्थ का मेल जमाने के लिए धूर्तो का किया हुआ वह समझौता नही था। सन्त में और कोई श्रेष्ठता हो या न हो, उसका प्रथम लक्षण उसकी निस्पृहता है। जो निस्पृह है, वही निर्भय भी है। इसीलिए इन सन्तोने धर्माग्रही और धर्माभिमानी कर्मकाण्डी लोगो पर कोडे लगाते जरा भी सकोच नही किया।

सन्तो के पास इस सुधार-कार्य के लिए कोई निश्चित योजना या कार्य-पद्धति नही थी। उन्हे पुरानी रचना तोडकर किसी नई रचना की स्थापना नही करनी थी। वे रचनामात्र को उदासीनता से देखते थे। कभी कहते थे, कि इन ग्रन्थो में क्या खोजते हो, उनमे क्या धरा हुआ है ! ग्रन्थों को छोड दो। ग्रन्थो के सहारे हृदय-ग्रन्थि खुलने की नही। 'मसि कागज के आसरे क्यो टूटै भव-बन्ध'। कभी कहते थे कि इन ग्रन्थो का कोई दोष नही। सोचनेवाले लोग ही जहाँ स्वार्थी, अज्ञानी या मोह-मत्त हो, वहाँ बेचारे धर्म-ग्रन्थ क्या करे ?

सन्तोने सबसे बड़ा काम यह किया कि धर्म और रूढ़ि के नाम पर जो भ्रम, वहम या गलतफहमियाँ फैली हुई थी उनको दूर कर दिया। सम्भवत सन्तो का सबसे श्रेष्ठ कार्य यही है।

लोक-भ्रम को दूर करने के साथ-साथ उन्होने व्यवहार-शुद्धि का कार्य भी काफी किया है। उनके जमाने मे भिन्न-भिन्न जातियों में जो कुछ छल-कपट और अमानुषता थी उसे भी दूर करने के लिए सन्तोने काफी प्रयत्न किया है। वे सत्य के प्रचारक थे। जहाँतक उनके जीवन का सम्बन्ध आता था, वे सत्याग्रही भी थे। किन्तु समाज की कमजोरी को और उनके और अपने बीच मे रहनेवाले अन्तर को देखकर सत्य-प्रचार से अधिक आग्रह उन्होने नही रखा।

सामाजिक सुधार के बारे में भी सन्तोने कुछ कम काम नही किया। छुआछूत को उन्होने ऐसा फटकारा है कि अगर स्वार्थी ब्राह्मणो ने उनका काम बिगाड न दिया होता तो छुआछूत कभी की नष्ट हो गई होती।

सन्त जानते थे कि जाति-व्यवस्था और वर्ण-व्यवस्था समाज के आर्थिक सगठन के लिए चाहे जितनी आवश्यक हो इस व्यवस्था से समाज

का कल्याण और व्यक्ति का उद्धार न कभी हुआ है और न होने की सम्भावना ही है।

सन्त-मत का प्रादुर्भाव यो तो अनादिकाल से है, किन्तु जिस 'सन्त-वाणी' का यहाँ संग्रह किया गया है, उस वाणी का और उसकी परम्परा का प्रारम्भ तो शायद कबीर से ही हुआ है। कबीर ने जो कार्य किया उसकी प्रेरणा तो उन्हे स्वामी रामानन्द से ही मिली थी। कबीर का हिन्दुओ और मुसलमानो दोनो के ही साथ घनिष्ट सम्बन्ध होने के कारण उनमे असाधारण योग्यता आ गई थी। निर्भयता के साथ वह दोनो को फटकारते थे। दोनो को शुद्ध सत्य-धर्म का रास्ता दिखाते थे। आज हमारे देश मे और खासकर गाँवो मे जो हिन्दू-मुस्लिम-एकता दीख पड़ती है वह सन्तो की ही बदौलत है। सन्तो ने सामाजिक नियम ज्यो-के-त्यो ही रहने दिये। वे जानते थे कि सामाजिक रूढियो के पीछे विशिष्ट वर्गो के हित-अहित का भी सवाल आता है। लोगो को इन रूढ़ियो की तरफ उदासीन बना दिया तो आधा काम हो गया। बाकी का आधा काम युग-प्रवर्तक काल स्वय ही कर लेगा। सन्तो की इस दृष्टि मे शायद दीर्घदर्शिता थी। शायद अपने कार्य को दृढ़ बनाने के सम्बन्ध में उदासीनता थी। समय जाते-जाते समाज में रूढ़ि ने अपना आसन फिर से जमा लिया और निश्चय किया कि सन्तो का उपदेश सन्तो के ही लिए अच्छा है। लोगो मे न तो सन्तो का त्याग है और न सन्तो की शान्ति ही। सन्तो के कार्य मे यह जो कमजोरी रह गई इसे सन्तो की कार्य-पद्धति का दोष मानें या मनुष्य-स्वभाव के नैसर्गिक दोष का परिणाम माने?

संतो ने शास्त्र-धर्म को श्रद्धांजलि देकर एक बाजू पर रख दिया। लोकधर्म मे जो अच्छा अश उन्हे मिला उसीकी उन्होने प्रतिष्ठा बढाई। और अनिष्ट अंश का प्राणपण से विरोध किया। अपना अनुभव, अपना

निरीक्षण और लोक-कल्याण के आधार पर उन्होंने विशिष्ट सिद्धान्त-निरपेक्ष-धर्म चलाया।

एक बात खासतौर से ध्यान मे रखनी चाहिए। इन सतो की गगोत्री तो नवनाथो के योगमार्ग में है। हठयोग और कीमिया का प्राधान्य उनमें बहुत था। बाद मे इन दोनो चीजो की प्रतिष्ठा कम होने लगी और सुरता-साधक ध्यानयोग का महत्त्व बढा। ध्यानयोग चूँकि लोक-सुलभ नही था, इसलिए उसके साथ-साथ भक्ति-योग आगया। अनासक्ति और त्याग तो सत-धर्म में प्रारम्भ से अततक भरा ही हुआ है। हठयोग की प्रतिष्ठा सतो ने अपने मूक विरोध से जिस तरह कम की, उसी तरह ब्रह्मचर्याश्रम की भी प्रष्ठिा सतो ने विना किसी विरोध के कम करदी। जो ब्रह्मचारी है वही सत हो सकता है—गृहस्थाश्रम सतों के लिए है ही नही, ऐसे विचार को उन्होने धीरे-धीरे नरम बनाकर सादगी, सतोष, अपरिग्रह, और भूतमात्र के कल्याण की दया-वृत्ति, इन्ही वस्तुओ को उन्होने जीवन का सार-सर्वस्व बताया।

सतो के प्रभाव से हमारा राष्ट्रीय चारित्र्य बहुत ही ऊँचा उठा, इसमें कोई सदेह ही नही। किन्तु आजकल सत-मत के प्रचार के बारे में एक शिकायत बार-बार उठती है। वह यह कि सतो ने लोगो मे जो सतोष-वृत्ति और अनाग्रह पैदा किया उसीका नतीजा है कि लोगो में लोक-जीवन के बारे में अनुत्साह पैदा होगया। सतवाणी का अधिक-से-अधिक प्रचार हुआ—सिक्खो में, वैष्णवो में और महाराष्ट्र के वार्करी लोगों मे। सत-मत के और सतवाणी के प्रचार के गुण-दोप इन लोगो के जीवन से निश्चित करने का मोह ऐतिहासिको को अवश्य होगा, किंतु ऐसा करना उचित नही है। प्राचीनकाल से मनुष्य ने अपने सामाजिक गुण-दोष के अनुसार अपने धर्म को समझ लिया और अपनी सकुचित दृष्टि के अनु-

सार उसका पालन किया। जो कायर हैं, वे अहिंसा की ढाल के पीछे रहकर अपनी कायरता को ढांक देते हैं, इससे अहिंसा-धर्म कायरो का धर्म सिद्ध नही होता।

भाषा की दृष्टि से भी संतो की सेवा कुछ कम नही है। संतो ने तो भाषा की एक टकसाल ही खोल दी है, जिसमें से नई-नई किस्म की अशर्फियाँ नित्य ढल-ढलकर निकलती रहती है। बदूक की गोली की तरह संतवाणी सीधे मनुष्य के हृदयतक पहुँचकर एक क्षण के अन्दर उसकी मरी हुई धर्म-बुद्धि को पुनर्जीवित कर देती है। संतो की वाणी वहुवर्थ, जनमनोहर, अल्पाक्षर, मधुर और सत्यपूर्ण होती है। उनकी शैली निश्चयात्मक होती है, क्योंकि वह जीवनमूलक होती है, इसी कारण वह लोक-सुलभ भी होती है। संतवाणी किसी भी राष्ट्र की सर्वश्रेष्ठ पूँजी है। वह वाणी का विलास नही, किंतु जीवन का निचोड है, इसी-लिए वह जीवित और अमर होती है। संतवाणी वही स्वर्गीय गंगा है, जिसमे स्नान-पान करने से लोक-जीवन पवित्र, समृद्ध, समर्थ और स्वतत्र हो जाता है।

भिन्न-भिन्न संतो के वचनो का ऐसा सग्रह करना दीर्घ काल के संकल्प और प्रयत्नो का फल होता है। उसके पीछे जो परिश्रम किया जाता है, उसके साथ-साथ जो अपूर्व आनन्द मिलता है, वही उस परिश्रम का मधुर फल है। इस सग्रह के पठन-पाठन से जो आनन्द होता है उससे कही वढकर सग्रहकार को इन रत्नो का चुनाव करने मे हुआ होगा।

सग्रह करने के बाद सग्रहकार ने जो भिन्न-भिन्न शीर्षको के नीचे इनका वर्गीकरण किया है वे शीर्षक ही सन्तमत का रहस्य वताने के लिए समर्थ है।

सग्रह के साथ-साथ आधुनिक हिन्दी गद्य में सग्रह का जो भावार्थ (paraphrase) सग्रहकार ने दिया है, उसमे उसकी कवित्व-शक्ति भी प्रकट होती है। इसे पढते हुए एक गद्य काव्य का रसास्वाद मिल जाता है।

मुझे विश्वास है कि जिनकी जन्मभाषा हिन्दी नही है उनके लिए यह भावार्थ बडी सहायता पहुँचायेगा। अपनी-अपनी प्रान्तीय भाषाएँ बोलनेवाले हम हिन्दी-प्रेमियो का यह विशेष कर्त्तव्य है कि हम अपनी-अपनी भाषाओ के सतो की सूक्तियो का ऐसा ही सग्रह सकलित कर उसे नागरी अक्षरो में छपा दें और हिन्दी में उसका अनुवाद भी दे दें। वियोगीजी की गद्यकाव्य-शक्ति हरेक भाषान्तरकार में शायद न हो, किन्तु कवियो की वाणी का तेज और उसकी मधुरिमा अपने कर-भार से राष्ट्रभाषा को समृद्ध किये विना नही रहेगी।

'सर्वोदय' कार्यालय,
वर्धा
नवम्बर १९३८

काका कालेलकर

विषय सूची

सन्त-वाणी

: १ :

"घट-घट व्यापक राम"

१. मेरा स्वामी हर घट के अन्दर मौजूद है,
एक भी सेज नही, जो मेरे प्यारे सजन से सूनी हो।
पर बलिहारी तो उस घट की है—
जिसमे प्रकट हो वह प्यारा प्रीतम दीदार देता है।

२. मेरा साईं आग की नाईं,
घट-घट मे समाया हुआ है।
पर लगन के चकमक से चित्त लगे तब न—
इसीसे तो मेरी यह निगोडी लौ बुझ-बुझ जाती है।

३. मेरा राम रम तो हर घट मे रहा है,
पर इस भेद को समझता कोई बिरला ही है।
राम की अलख व्यापकता को तो वही समझेगा,
जो उसके प्रेम के गहरे रग मे रँगा होगा।

४. इस तन के अन्दर ही तो वह शाही तख्त है।
जिसपर हमारा शाहो का शाह आसीन है।
जहान मे जितने भी जीव है,
वही से वह सबका मुजरा लिया करता है।

५. ज्योतिरूप से यह आत्मतत्त्व हर घट मे समाया हुआ है,
मेरा यह परम प्यारा तत्त्व
एक क्षण भी इधर-उधर नही जाता।

: १ :

"घट-घट व्यापक राम"

१

सब घट मेरा साइयाँ, सूनी सेज न कोइ;
वा घट की बलिहारियाँ, जा घट परगट होइ।

[कबीर

२

पावकरूपी साइयाँ, सब घट रह्या समाइ;
चित चकमक लागै नही, ताते बुझ-बुझ जाइ।

[कबीर

३

सब घट माहीं रमि रह्या, बिरला बूझै कोइ;
सोई बूझै राम को, जो रामसनेही होइ।

[दादूदयाल

४

'धरनी' तन में तख्त है, ता ऊपर सुलतान;
लेत मोजरा सबहि का, जहँ लौं जीव जहान।

[धरनीदास

५

जोतिसरूपी आतमा, घट-घट रह्यो समाइ;
परम तत्त मनभावतो, नेक न इत-उत जाइ।

[यारी

६ हर घट में सुरत की गोपी है,
और हर घट मे गोपिका-विहारी कृष्ण।
मेरे राम का अमर ठौर हर घट के अन्दर है।

७. अजब रहस्य है !
खालिक मे यह खलक समाया हुआ है,
और खलक में मेरा खालिक !
हमे तो हर घट में यही अजब लीला नज़र आ रही है।

८ बाबा, तुम तो सदा उस अल्लाह के गुण गाओ,
जो सबके अन्तर मे रम रहा है।

९. मेरे पूर्णब्रह्म स्वामी, क्या कहूँ तेरी महिमा को !
धन्य ! हर पलक और हर नज़र मे तेरा दर्शन मिल रहा है।

१० उस देवता का मन्दिर तेरे दिल के अन्दर ही है—
उसीकी तू सेवा और उसकी पूजा कर।
क्या तेरा हरेक श्वास इसका साक्षी नही है ?

११ अनेक कर्त्तार तो है नहीं,
सरजनहार स्वामी तो एक ही है।
दर्पण के हर टुकडे में सूरत तो एक ही नज़र आती है।

६

घट-घट गोपी, घट-घट कान्ह;
घट-घट राम, अमर अस्थान।

[दादूदयाल

७

खालिक खलक, खलक में खालिक;
सब घट रह्या समाई ।

[कबीर

८

जिकिर करो अल्ला का बाबा;
सबल्यां अन्दर भेस ।

[तुकाराम

९

साहिब तेरी साहिबी, कहा कहूँ करतार;
पलक-पलक की दीठि में, पूरन ब्रह्म हमार ।

[गरीबदास

१०

दिल के अंदर देहरा, जा देवल में देव;
हरदम साखीभूत है, करो तासु की सेव ।

[गरीबदास

११

एते करता कहाँ हैं, वह तो साहिब एक;
जैसे फूटी आरसी, टूक-टूक में देख ।

[गरीबदास

१२. अरे भोदू, कहाँ भटक रहा है तू
स्वर्गो में और सातवे आसमान पर ?
खालिक की खोज में क्यो व्यर्थ हैरान हो रहा है ?
जरा, उसे अपने अन्दर के महल में तो तलाश !

१३ एक ही सम्प्रदाय है, एक ही पथ,
और हर घट मे आनन्द-स्रोत का एक ही द्वार है।
आत्मा तो वही सारी सूरतो मे झलक रही है,
बाकी तो सब जगत का बखेडा ही है।

१४ कहो, अब मै किससे वैर करूँ ?
जबकि मेरे प्रभु खुद पुकार-पुकारके कहते है कि—
"घट-घट में मै ही विहार कर रहा हूँ।"

१५ अरे ! उसे तू वन मे क्यो खोजने जा रहा है ?
वह घट-घटवासी अलिप्त स्वामी तो
तेरे रोम-रोम मे समाया हुआ है।
फूल मे जैसे सुगन्ध बसती है,
और दर्पण में जैसे परछाई,
उसी भाति हरि का निरन्तर तेरे अन्तर में निवास है,
उसे तू अपने घट के अदर ही खोज।

१६ तेरे गुनहगार भागें तो भागकर जायँ कहाँ ?
छिपने के सारे ठौर खोज डाले सरकार !
पर जहाँ भी गये, वही तुझे मौजूद पाया !

१२

सात सरग असमान पर, भटकत है मन मूढ़;
खालिक तो खोया नहीं, इसी महल में ढूँढ़।

[गरीबदास

१३

एक संप्रदा, सबद घट, एक द्वार सुख-संच;
इक आतमा सब भेष मों, दूजो जग-परपंच।

[भीखा

१४

अब हो कासो बैर करो ?
कहत पुकारि प्रभू निज मुख ते—
"घट-घट हो बिहरौं ।"

[हरिदास

१५

काहे रे, बन खोजन जाई ?
सर्व निवासी सदा अलेपा,
तोही संग समाई ।
पुष्प मध्य ज्यो बास बसत है,
मुकुर मध्य ज्यो छाई;
तैसे ही हरि बसै निरंतर,
घट ही खोजो भाई !

[नानक

१६

गुनहगार अपराधी तेरे, भाजि कहाँ हम जांहि;
'दादू' देख्या सोधि सब, तुम बिन कहिं न समांहि।

[दादूदयाल

१७. अपने दयाल मालिक को हर जगह मौजूद पाता हूँ,
मेरा राम मेरे रोम-रोम मे रम रहा है।
मत समझ कि मेरा स्वामी मुझसे दूर है :

१८. सद्गुरु की प्रसादी ही समझो कि—
मेरी दुष्ट द्वैत बुद्धि दूर हो गई।
अब तो जहाँ देखता हूँ,
वही-वही एक नजर आता है।

१९. बाहर-भीतर सब जगह—
उसी दयाल मालिक को मौजूद पाता हूँ।
हर दिशा मे वही प्रीतम प्यारा नजर आता है,
दूसरा तो कही कोई है ही नही।

२०. वह तो एक ही है,
अनन्तरूप तो यह सारा कृत्रिम आभास है।
'घट-घट मे एक ही आत्मा है'—
इस रहस्य को सत ही जानते है।

२१ हम सब मे है, और सब हम मे है—
हम से भिन्न दूसरी कोई वस्तु है ही नही।

२२ पचास हजार घड़ो मे पानी लाकर भरदो,
और फिर देखो, आकाश में दिपनेवाले सूरज की परछाई,
हर घडे मे दिखती है या नही ?

१७

'दादू' देखौं दयाल को, सकल रह्या भरपूरि;
रोम-रोम में रमि रह्या, तू जिनि जाणै दूरि।

[दादूदयाल

१८

गुरु-परसादी दुरमति खोई,
जहँ देखा तहँ एका सोई।

[नानक

१९

'दादू' देखौं दयाल को बाहरि भीतरि सोइ;
सब दिसि देखौं पीव को, दूसर नाही कोइ।

[दादूदयाल

२०

'भीखा' केवल एक है, किरतिम भया अनत;
एकै आतम सकल घट, यह गति जानहि संत।

[भीखा

२१

हम सब माँहि, सकल हम माँहि;
हमते और दूसरा नाँहि।

[कबीर

२२

गगरी सहस पचास, जौ कोउ पानी भरि धरै;
सूरज दिपै अकाश, 'मुहमद' सब महँ देखिए।

[मुहम्मद जायसी

: २ :

"राम वही, रहमान वही"

१. बाबा, तू-ही-तू है, दूसरा और कौन है ?
सदा-सर्वत्र एक तू ही है, हाँ, नाम तेरे असख्य है ।
तू ही अलख, और तू ही इलाही, तू ही राम और तू ही रहीम।
मेरे मालिक, तू ही मेरा मोहन है, और तू ही कृष्ण केशव !
और प्यारे, तुझीको करीम भी कहते हैं ।
स्वामी भी तू, और सरजनहार भी तू;
प्रभो, तू ही पावन है, तू ही पाक परवरदिगार है ।
तू ही सनातन पुरुष है, और तू ही कर्त्तार है ।
हरि, जहाँ भी देखता हूँ, तू-ही-तू नजर आता है ।
राम, अणु-परमाणु में तू ही रमा हुआ है ।
अल्लाह, फिर भी तू एक है, अद्वितीय है ।
जगत का तू ही एक धनी है—
खलक का तू ही एक स्वामी है ।
तू अद्भुत है, अनुपम है—है एक, पर नाम तेरे अनेक हैं—
'दादू' की समझ मे तो कुछ ऐसा ही आया है ।

२. अरे बाबा, कुछ भी कहो—
अल्लाह कहो, चाहे उसे राम कहो,
तुम तो बस एक मूल को पकड़लो—और इन डालो को छोड़दो ।
अल्लाह या राम के प्रेम की आग से जला दो
अपने इन वासना-जनित कर्मों को ।
क्यो व्यर्थ असत् के मार्ग से चिपटे हुए हो ?

: २ :

"राम वही, रहमान वही"

१

बाबा, नाहीं दूजा कोई ।
एक अनेकन नाम तुम्हारे, मो पै और न होई
अलख इलाही एक तू, तू ही राम, रहीम;
तू ही मालिक, मोहना, केसौ नाम करीम ।
साईं सरजनहार तू, तू पावन, तू पाक;
तू कायम करतार तू, तू हरि हाजिर आप ।
अविगत अल्लह एक तू, गनी गुसाईं एक;
अजब अनूपम आप है, 'दादू' नाम अनेक ।

[दादूदयाल

२

अलह कहौ, भावै राम कहौ;
डाल तजौ सब मूल गहौ ।
अल्लह राम कहि कर्म दहौ;
झूठे मारग कहा बहौ ?

[दादूदयाल

३. कोई तो राम की बात सुनाने लग जाता है,
और कोई अल्लाह की—
पर, न किसी वक्ता को अल्लाह का भेद मिला, और न राम का !

४. जबतक तूने कृष्ण और करीम को,
राम और रहीम को अभेद की दृष्टि से नही देखा—
तबतक वेद मे, कुरान में, और पुराण मे
तुझे भ्रम-ही-भ्रम नज़र आयेगा ।

५. मियाँ, पडे किस भ्रम मे हो ?
क्या राम और रहीम में कोई भेद है ?
ये तो एक ही प्रीतम प्रभु के दो नाम हैं ।

६. मुझे तो भाई, अभेद की पारसमणि हाथ लग गई है ।
मायाकृत वह भेद-बुद्धि आज दूर हो गई है ।
मेरे लिए तो जो अलख-निरजन है, वही अल्लाह है,
जो ब्रह्म है वही ख़ालिक है, और वही ख़ुदा है ।
प्राण मेरे राम मे बसते है—
और, दीन और ईमान मेरा रहमान से लगा हुआ है ।
मै तो अब सारा भेद-भाव भूल गया हूँ ।
लोक-लाज की मुझे तनिक भी पर्वा नही—
जिसे जो कहना हो कहे ।
मै कोई दुविधा नही जानता—
दुई नज़र आवे तब न !
मेरी आँखो मे तो वही झूल रहा है,
जो मेरे दिल में समाया हुआ है ।
हरि की, हज़रत की, माधव की और मुकुद की कसम खाकर,
यह 'मलूका' कहता है—
एक केशवराय को छोडकर जगत मे मुझे किसी दूसरे का
अब आसरा-भरोसा नही ।

३

कोई राम, कोई अल्लाह सुनावैं;
पैं अल्लाह राम का भेद न पावैं।

[दादूदयाल

४

कृष्ण करीम, रहीम राम हरि, जबलगि एक न पेखा,
बेद कतेब कुरान पुराननि, तबलगि भ्रम ही देखा।

[रैदास

५

'दास मलूक' कहा भरमौ तुम—
राम रहीम कहावत एकैं।

[मलूकदास

६

अलख अल्लाह, ब्रह्म खालिक खुदा है एक,
मेरे तो अभेद-भाव माया-मति खोई है;
राम मेरे प्रान, रहिमान मेरे दीन-ईमान;
भूल गयो भैया, सब लोक-लाज धोई है।
कहत 'मलूक', मैं तो दुविधा न जानौं दूजौं;
जोई मेरे मन में है, नैनन में सोई है।
हरि हजरत मोहि माधव मुकुन्द की सौं;
छाँड़ि केसौराय, मेरो दूसरो न कोई है॥

[मलूकदास

७. जो राम है, वही रहीम है, जो करीम है, वही केशव है,
जो अल्लाह है, वही राम है—और वही सनातन सत्य है।
वेद और कुरान एक ही विश्वभर की महिमा गाते हैं।
दूसरा तो कोई नज़र आता ही नहीं।

८. ये दो-दो जगदीश कहाँ से आगये ?
जगत का ईश तो, भाई, एक ही है।
यह तुम्हे किसने वहम मे डाल रखा है ?
जो अल्लाह है वही राम है, जो करीम है वही केशव है,
हरि कहो, चाहे हजरत कहो—
खालिक तो खलक का एक ही है।

९. जो राम है वही खुदा है;
वही शक्ति है, और वही शिव है—
फिर यह भेदभाव का निर्माण तुमने किया कैसे ?

१०. उसे कोई राम कहे, या रहमान कहे,
कृष्ण कहे, या महादेव कहे,
या उसे कोई पारसनाथ, या ब्रह्मा कहे
हैं ये सब एक ब्रह्म के ही नाम।

७

राम, रहीम, करीम, केसव, अलह राम सति सोई;
बेद कुरान बिसम्भर एकै, और न दूजा कोई।

[कबीर

८

दुइ जगदीस कहाँ से आया
कहु कवने भरमाया ?
अल्लह राम करीमा केसौ
हरि हज़रत नाम धराया।

[कबीर

९

राम खुदाय शक्ति शिव एकै
कहुँ धौं काहि निबेरा ?

[कबीर

१०

राम कहो, रहमान कहो,
कान्ह कहो, महादेव रे !
पारसनाथ कहो कोउ ब्रह्मा,
सकल ब्रह्म स्वयमेव रे !

[आनदवन

: ३ :

"सीस देइ ले जाय"

१. यह कोई खाला का घर तो है नही,
यह तो, बाबा, प्रेम का घर है ।
वही सूरमा इसमे पैठने का साहस करे,
जिसने अपना सर उतारके ज़मीन पर रख दिया हो ।

२. प्रेम न तो किसी बाग मे पैदा होता है,
और न किसी हाट-बाजार मे बिकता है ।
राजा और प्रजा यहाँ सब बराबर है—
जिसे भावे, अपना सर देकर इस रतन को बिसाह ले जाय ।

३ दीन औ, दुनिया दोनो को ही निछावर करता हूँ,
ज़रा-सा बस, दीदार-रस पी लेने दो ।
इस तन को और इस मन को भी निसार करता हूँ;
और लो, स्वर्ग का लोभ, और नरक का भय भी छोड़ देता हूँ ।

४ प्यारे, जो कुछ तुमने दिया, वह सब तुम्ही लेलो,
हमें तो बस तुम्हारा एक दीदार चाहिए ।
क्या करे, बिना तुम्हारे यह निगोडा मन मानता ही नही ।

५ अल्लाह का प्यारा प्रेम अगर कभी प्रकट हो पड़े,
तो उसी क्षण तन का, मन का, दिल का और सुरत का[१]
सारा पर्दा जलकर खाक हो जाय ।

६ इश्क तो तब कहो—
जब कि आशिक खुद माशूक का चोला पहन ले ।
ऐसे मस्त माशूक का आशिक अल्लाह ही हो सकता है ।

---

१ जीवात्मा

: ३ :

"सीस देइ ले जाय"

१

यह तो घर हैं प्रेम का, खाला का घर नाँहि;
सीस उतारै भुइँ धरै, तव पैठै घर माँहि।

[कबीर

२

प्रेम न बाडी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय;
राजा-परजा जेहि रुचै, सीस देइ ले जाय।

[कबीर

३

दीन दुनी सदकै करौं, टुक देखण दे दीदार;
तन मन भी छिन-छिन करौं, भिस्त दोजख भी वार।

[दादूदयाल

४

जो कुछ तुम हमकों दिया, सो सब तुमहीं लेहु;
तुम बिन मन मानै नहीं, दरस आपणा देहु।

[दादूदयाल

५

'दादू' इसक अलाह का, जे कबहूँ प्रगटै आय;
तन मन दिल अरवाह का, सब परदा जल जाय।

[दादूदयाल

६

आसिक मासुक ह्वै गया, इसक कहावै सोइ;
'दादू' उस मासूक का, अल्लहि आसिक होइ।

[दादूदयाल

७. वह प्रीतम प्यारा तो तुझे तब मिले,
जब तू उसके आगे अपने तन की बोटी-बोटी कुर्बान कर बाँट दे—
फिर भी वह मीठा-मीठा महबूब तुझे कड़ुवा न लगे ।

८. सारी रात नींद नहीं पड़ती—
और, यह जी थर-थर काँपता रहता है ।
न जाने मेरा ज़ालिम प्रीतम क्या करनेवाला है !

९. सारे मोहन-बाजे मेरे अन्तर में बज रहे है,
कभी मैं प्रेम का पखावज सुनता हूँ, और कभी बीन,
बजानेवाला तो दिल के अन्दर ही बैठा है ।
बाहर के मन्दिरों में उसे कौन ढूँढ़ता फिरे !

१० यह शरीर तो है मेरा रबाब,
और यह सारी रगें हैं उसकी ताँत ।
मुझ विरही के इस रबाब को और कोई नहीं सुन सकता,
इसे या तो मेरा स्वामी सुनता है या यह दिल ।

११. आँखों के ये लोभी पलक गिरते ही नहीं,
प्रीतम की झलक इन्हें कितनी मीठी लगती है !
उस परमरस को अघा-अघाकर बारबार पीते हैं ।
तो भी इन लोभियों की प्यास नहीं बुझती !

१२. हाँ, अपने प्रीतम को मैंने इस तरह रिझाया है—
आँखों की कोठरी सजाई, उसमें रँगीली पुतलियों का पलग बिछाया,
और खिड़कियों पर पलकों की चिकें डाल दीं ।
इस तरह मैंने अपने प्यारे प्रीतम को रिझाया ।

७

भोरे-भोरे तन करै, वंडै करि कुरवाण;
मीठा कौड़ा ना लगै, 'दादू' तोहू साण।

[दादूदयाल

८

रात न आवै नींदडी, थर-थर काँपै जीव;
ना जानूं क्या करैगा, जालिम मेरा पीव।

[मलूकदास

९

सब बाजे हिरदे बजैं, प्रेम पखावज तार;
मंदिर ढूंढ़त को फिरै, मिल्यो बजावनहार।

[मलूकदास

१०

सब रग ताँत रबाब तन, बिरह् बजावै नित्त;
और न कोई सुनि सकै, कै साईं कै चित्त।

[कबीर

११

'धरनी' पलक परै नहीं, पिय की झलक सुहाय;
पुनि-पुनि पीवत परमरस, तबहूँ प्यास न जाय।

[धरनीदास

१२

नैनों की करि कोठरी, पुतली-पलँग बिछाय;
पलकों की चिक डारिकै, पिय को लिया रिझाय।

[कबीर

१३ यह निर्दय विरह मुझे कैसा सता रहा है,
देख जाय कोई यह मेरी तालावेली ।
स्वामी, जल्दी ही आकर दीदार-रस पिलाओ ।
कितनी तीव्र है तुम्हे देखने की उत्कण्ठा ।
आँखें कब से तुम्हें छूने और पीने को तरस रही है !
एक पल भी तो ये पलक नहीं गिरते ।
प्यारे, तेरे दीदार का दर्दी न रात सोता है न दिन ।

१४ मैं हिरनी हूँ, और प्रीतम मेरा बहेलिया,
निर्दयी मुझे शब्द के बाण खीच-खीचकर मार रहा है ।
शब्द का बेधा हुआ ही इस दर्द को जानता है,
अनबेधा इस पीर को क्या जाने ?

१५ बावली, जरा तू अपने घूँघट का पर्दा तो हटा—
तुझे तेरा प्रीतम मिलेगा, और फिर मिलेगा ।

१६. मै तो सजनि, अब उसी दिन फाग खेलूंगी,
जिस दिन मेरा प्रीतम मेरे द्वार पर आयगा ।
वही मेरा रग होगा, और वही मेरा रँगरेज़—
उसीके हाथ इस चूनरी को सुरँग रग में रँगवाऊँगी ।
अभी तो जोगन बनकर मैं उसे वन-वन ढूंढती फिरती हूँ,
कब भेंट हो और कब उसकी नेह-नगरी में जा बसूं !

१३

बिरह सतावै मोंहि को,
जिव तड़पै मेरा;
तुम देखन की चाव है
प्रभु, मिलौ सबेरा।
नैना तरसैं दरस को,
पल पलक न लागैं;
दरदवंत दीदार का,
निसि-वासर जागैं।

[कबीर

१४

हौं हिरनी पिय पारधी,
मारे सबद के बान;
जाहि लगी सो जानही,
और दरद नहिं जान।

[कबीर

१५

घूँघट का पट खोल रे,
तोको पीव मिलैंगे।

[कबीर

१६

मैं तो वा दिन फाग मचैहो,
जा दिन पिय मोरे द्वारे ऐहैं।
रंग वही रँगरेजवा ओही,
सुरँग चुनरिया रंगैहों।
जोगिन होइ के बन-बन ढूँढ़ौं,
वा ही नगरी में रहिहौं। [कबीर

१७ प्रभो, तुम तो हो चन्दन, और हम है पानी—
तुम्हारी सुवास हमारे अग-अग में समाई हुई है।
प्रभो, तुम तो श्यामघन हो और सघन वन, और हम हैं तुम्हारे प्रेमोन्मत्त मयूर—
और तुम चन्द्र हो, और हम तुम्हारे चकोर हैं।
प्रभो, तुम तो हो दीपक, और हम हैं तुम्हारी बाती—
तुम्हारी ज्योति दिन-रात हमारे अन्तर में जला करती है।
प्रभो, तुम मोती हो, और हम धागे हैं,
तुम कचन हो, और हम सुहागा है—
तुम्हारा-हमारा मिलन ऐसा एकाकार है प्रभो!
नाथ, तुम हमारे स्वामी हो, और हम तुम्हारे सेवक—
तुम्हारा यह 'रैदास' तुम्हे इसी भाँति भजता है।

१८. पपीहा यह एक ही बूंद के लिए तो तड़प रहा है;
प्राण छूट जाने पर समुद्र भी मिला तो किस काम का?
थके और अस्थिर प्राणों को फिर कैसे शान्ति दोगे?
डूब मरने पर नाव भेजोगे, नाथ!
तो उस पर चढाओगे किसे?

१९ प्रेम-सुरा की भट्टी पर,
लो, ये कितने लोग आ बैठे है!
अरे, पीयेगा तो इस हाला को वही पीवनहार—
जो अपना सर काटकर साकी को सौंप देगा।

२० अपने प्यारे को पाती तब लिखूँ,
जब वह कहीं परदेस में बैठा हो।
उसे क्या सँदेसा भेजूँ,
जो तन में, मन में और नयनों में समाया हुआ है?

१७

प्रभुजी, तुम चंदन हम पानी,
जाकी अँग-अँग बास समानी।
प्रभुजी, तुम घन बन हम मोरा,
जैसे चितवत चंद चकोरा।
प्रभुजी, तुम दीपक हम बाती,
जाकी जोति बरै दिन-राती।
प्रभुजी, तुम मोती हम धागा,
जैसे सोनहिं मिलत सुहागा।
प्रभुजी, तुम स्वामी हम दासा,
ऐसी भक्ति करै 'रैदासा'।

[रैदास

१८

एक बूँद जल कारनें चातक दुख पावै,
प्रान गये सागर मिलै, पुनि काम न आवै।
प्रान जो थाके थिर नहीं, कैसे बिरमावो,
बूड़ि मुए नौका मिलै, कहु काहि चढ़ावो।

[सदना

१९

'कबीर' भाठी प्रेम की, बहुतक बैठे आय;
सिर सौंपै सो पीवसी, नातर पिया न जाय।

[कबीर

२०

प्रीतम को पतिया लिखूँ, जो कहुँ होय बिदेस;
तन में मन में नैन में, ताको कहा सँदेस।

[कबीर

२१. प्रीतम का वह प्यारा मुखड़ा कब देखने को मिलेगा ?
उसे देखने-निरखने के लिए—
इस तन का तो बनाया जाय दीपक,
और उसमें जीवात्मा की जलाई जाय बत्ती—
और तेल डाला जाय हृदय के रक्त का—
फिर देखें उस दीये के उजेले मे उस प्यारे-प्यारे मुखडे को।

२२. प्यारे, यह काया तो तब रँगी जायगी,
जब इसे तेरा नामरूपी लाल रंग मिले।
तू जिस रग मे इस काया को रँगेगा,
वैसा रग जगत मे कही नज़र आने का नही।

२३. मैं तो प्रेम की दीवानी हूँ, री!
मेरे अतर का दर्द कोई नही जानता।
हमारी सेज, देख, सूली के ऊपर बिछी है,
उस सेज पर सोऊँ तो कैसे ?
और मेरे प्रीतम की सेज है अधर आकाश-मडल पर—
कैसे वहाँ सजन से मेरा मिलन हो ?

२४. मेरे सरजनहार, तुम्हीमें अनुरक्त हूँ और तुम्हीमे उन्मत्त हूँ,
और रंग भी तुम्हारा ही लगा हुआ है।
तुम्हारे ही साथ खेलता हूँ, तुम्हीसे मिलता हूँ,
और तुम्हीसे मेरा प्रेम और स्नेह है।
लेना भी तुम्हीसे, और देना भी तुम्हीसे,
मेरे सरजनहार, तुम्हीसे मेरा अनुराग है।
मेरे खालिक, मेरे मालिक!
मै तो एक तुम्हीपर आशिक हूँ,
इश्क लगाने मै और कहाँ जाऊँ ?

२१

यह तन का दिवला करौं, वाती मेलो जीव;
लोहू सींचौं तेल ज्यो, कव मुख देखौं पीव ।

[कबीर

२२

काया रंगन जे थियें प्यारे,
पाइये नाउँ मजीठ;
रँगनवाला जे रँगे साहिव
ऐसा रंग न डीठ ।

[नानक

२३

हेरी, मैं तो प्रेम-दिवानी—
मेरा दरद न जाने कोय ।
सूली ऊपर सेज हमारी
किस विध सोना होय ?
गगन-मंडल पै सेज पिया की
किस विध मिलना होय ?

[मीराँ

२४

तुमसों राता, तुमसों माता;
तुमसो लागा रंग रे खालिक,
तुमसों खेला, तुमसों मेला,
तुमसो प्रेम-सनेह रे खालिक !
तुमसों लेणा, तुमसों देणा,
तुम ही सो रत होइ रे खालिक ।
खालिक मेरा, आसिक तेरा,
'दादू' अनत न जाइ रे खालिक । [दादूदयाल

२५. विरह में जलती देख स्वामी दौड़ आये;
और प्रेम के छींटे देकर तुरंत उसके तन की आग बुझादी।

२६. यह दुख अब तो सहा नही जाता—
एक ही सेज पर एकसंग हम दोनो रहते हैं,
पर साथ रहना-न रहना बराबर ही हैं—
जबतक उसे इन आँखो से नही देखा,
और जबतक उससे प्रकट मिलन नही हुआ।

२७. मेरे मालिक, मैं तो तेरे दीदार का दीवाना हूँ।
हर घडी, हर पल तुझे ही देखना चाहता हूँ।
तेरा प्रेम-प्याला पीकर अलमस्त हो गया हूँ,
मुझे तो अब इस तन की भी सुध नही रही।
खडा होता हूँ, तो गिर-गिर पडता हूँ,
तेरे प्रेमरसने कैसा मतवाला कर दिया है मुझे।
न मैं तौजी जानता हूँ, न नमाज,
और रोजा रखना भी नही जानता।
और अजान देना तो उसी दिन से भूल गया हूँ,
जब से इस दिल के अन्दर तुझे खोजा है।
प्रेम की मदिरा ढालकर,
दिल को दिल का आशिक बना लिया है।
मक्का और हज अब अन्तर के पट में ही देखता हूँ,
क्योंकि मुझे पूर्ण सद्गुरु मिल गया है।

२५

बिरह-जलंती देखिके, साईं आये धाय;
प्रेम-बूंद से छिरकिके, जलती लई बुझाय।

[कबीर

२६

जब लगि नैन न देखिये
परगट मिलै न आय,
एक सेज संगहि रहै,
यह दुख सह्या न जाय।

[दादूदयाल

२७

तेरा मैं दीदार-दिवाना;
घडी-घडी तुझे देखा चाहूँ,
सुन साहिब रहिमाना;
हुआ अलमस्त खबर नहिं तन की।
पीया प्रेम-पियाला;
ठाड़ होऊँ तो गिर-गिर पड़ता।
तेरे रँग मतवाला;
तौजी और निमाज न जानूं,
ना जानूं धरि रोजा;
बाँग जिकिर तब ही से बिसरी,
जबसे यह दिल खोजा;
कहै मलूक, प्रेममद पीया।
दिलही सों दिल पाया;
मक्का हज्ज हिये में देखा।
पूरा मुरसिद पाया; [मलूकदास

२८ सदा सुहागिन जीवात्माने सहज सिंगार किया
और प्रेम का दिया जलाकर चहुँ ओर प्रकाश फेंका.
और फिर अपने प्रीतम से मिलने को अधीर हो चल पडी ।

२९. प्रीतम की खोज मे वह न जाने किस-किस बनखंड मे गई,
सारी रात उसे खोजा—
जब वह न मिला, तब दर्द से लिपटके पड़ रही ।

३०. जिस घट के अंदर प्रेम का वृक्ष उगा,
समझलो, उस सुन्दर विटप की छाहँ में
इन्द्रियो और तत्त्वो की सारी उछल-कूद बंद हो गई,
उस घटवासी को 'स्थिरप्रज्ञता' की प्रसादी मिल गई ।

३१. ऐसे वर के साथ क्यों विवाह करूँ,
जिसका जन्म होता हो, और फिर मरण ?
साँवले गोपाल को अपना वर क्यो न वरूँ,
जिस पति के साथ मेरा सुहाग अमर हो जाय ?

३२. सजनि, मै विरहिनी ही यहाँ अकेली बैठी जाग रही हूँ,
दुनिया तो सारी सुख-निंदियो सो रही है ।

३३ और सखियाँ तो सब मद्य पी-पीकर मतवाली हो रही है,
पर मैं विना पिये ही नशे मे चूर हूँ ।
मैंने प्रेम की प्याली चढाली है,
यह नशा न दिन मे उतरता है, न रात में ।

२८

आतम नारि सुहागिनी, सुन्दर आपु सँवारि;
पिय मिलबे को उठि चली, चौमुख दियना बारि।

[यारी

२९

बिरहिन पिउ के कारने, ढूँढ़न बनखँड जाय;
निसि बीती पिउ ना मिला, रही दरद लपटाय।

[दरिया

३०

'दूलन' बिरवा प्रेम को, जामेउ जेहि घट माँहि;
पाँच पचीसौं थकित भे तेहि तरुवर की छाँहि।

[दूलनदास

३१

ऐसे बर को क्या बरूँ, जो जन्मे औ मरि जाय;
बर बरिये इक साँवरो, मेरो चुड़लो अमर हो जाय।

[मीराँ

३२

मैं बिरहिन बैठी जागूँ,
जगत सब सोवै री आली!

[मीराँ

३३

और सखी मद पी-पी माती, मैं बिन पीयाँ-ही माती।
प्रेम-भठी को मैं मद पीयो, छकी फिरूँ दिन-राती।

[मीराँ

३४. मै तो दिन-रात ऐसा दिया जलाती हूँ—
दिया तो मेरा सुरत-निरत का है,
और उसमे बत्ती है पूर्ण मनोवृत्ति की,
और तेल उसमें मैंने अगम घानी का डाला है;
ऐसा दिया मै दिन-रात जलाती हूँ ।

३५. जोगी, जाता तू कहाँ है ? अरे, मत जा ।
मै तेरे पैर पड़ती हूँ, मत जा ।
प्रेम-भक्ति का निराला पंथ तू मुझे बता जा ।
देख, मै चन्दन की चिता बनाती हूँ,
मुझे इस चिता पर तू अपने हाथ से जलादे ।
जलकर जब मै भस्म हो जाऊँ,
तो उसे तू अपने शरीर मे लगा लेना—
और अपनी ज्योति मे मेरी सुरत की ज्योति मिला देना ।
जोगी, तेरे पैर पडती हूँ, अभी तू मत जा ।

३६. या तो कोई मुझे वहाँ ले चले,
या उस प्रीतम को मेरे पास ले आवे ।
जो मुझे उस नगरी की डगर बतायगा,
उसकी मै बिनमोल दासी बन जाऊँगी ।

३७. तुम परम सुजान हो,
और मै ठहरी भोली-भाली बाला;
तुम हो निर्मल, और मैं हूँ मैली ।
तुम ऊँची-ऊँची बाते करते हो,
और मेरे मुहँ से बोल भी नही निकलते ।
इस प्रीति की घुडी मै कैसे खोलूँ !

३४

सुरत-निरत को दिवलो जोयो,
मनसा पूरन बाती ।
अगम घाणि को तेल सिंचायो,
बाल रही दिन-राती ।

[मीरां

३५

जोगी मत जा, मत जा, पांव परूँ मैं तेरे;
प्रेम-भक्ति को पैंडो ही न्यारो, हमकूं गैल बता जा ।
अगर चन्दन की चिता रचाऊँ, अपने हाथ जला जा;
जलबल भई भस्म की ढेरी, अपने अंग लगा जा ।
मीरां कहैं, प्रभु गिरिधरनागर, जोति में जोति मिला जा ।

[मीरां

३६

होय अस मोंहि ले जाय,
कि ताहि ले आवै हो ।
तेकरि होइवों दासिया;
जे रहिया बतावै हो ।

[धरनीदास

३७

थे जानराय, मैं बाला भोली;
थे निर्मल मैं मैली ।
थे बतरावौ, मैं बोल न जाणूं;
भेद न सकूं सहेली ।

[दरिया

३८. ये आँखें अब प्रीतम से जा लगी है,
और यह चचल मन स्मरण की साँकल में जकड़ गया है।
वरजने पर भी ये बरजोर आँखे नही मानती,
उसी ओर बरबस खिची जा रही है।

३९. प्रभु का आशिक तू इस तरह हो—
लाखो वचन तुझे निंदा के सुनने पड़ें,
लोग तुझे काफिर भी कहे,
पर तेरा यह जवाब हो :
'हाँ, मै काफिर ही सही, पर हूँ उसका आशिक।'

४०. सतगुरुने प्रेम का ऐसा बाण खीचकर मारा,
कि अब भी हिये में कसक रहा है।
उस जोगी की अनुराग-रस से भरी लाल-लाल आँखें थीं—
ऐसी, जैसे कमल के सुन्दर फूल;
और हमारी चूनरी भी वैसी ही गहरी लाल;
उसकी आँखे, और हमारी चूनरी,
दोनो एक ही रंग में रँगी हुई है!

४१. यो तृप्ति होने की नहीं—
इस प्रेम-रस का पान करने के लिए तो
रोम-रोम में रसना चाहिए।
हाँ, तभी शायद यह प्रेम की प्यास बुझेगी।

४२. प्रेम-पर्वत की चढाई विधना ने कैसी कठिन बनाई है।
इसपर सिर के बल ही कोई चढ सकता है।

३८

पिय सो लागी आँखियाँ;
मन परिगा जिकिर-जँजीर।
नैना बरजे ना रहैं;
जब ठिले जात वोहि तीर।

[दूलनदास

३९

'बुल्ला' आसिक हो यो रब्बदा, मलामत होई लाख;
लोग काफिर-काफिर आखदे, तू आहो-आहो आख।

[बुल्ला

४०

प्रेम-बान जोगी मारल हो;
कसकै हिया रे मोर ।
जोगिया के लाल-लाल अँखियाँ हो,
जस कमल कै फूल ।
हमरी सुरख चुनरिया हो;
दूनो भये इक तूल ।

[पलटदास

४१

रोम-रोम रस पीजिये, एती रसना होय;
'दादू' प्यासा प्रेम का, यौं बिन तृपति न होय।

[दादूदयाल

४२

प्रेम-पहार कठिन विधि गढ़ा;
सो पै चढ़ै जो सिर सो चढ़ा ।

[मुहम्मद जायसी

४३. प्रीति की लता तो अकेली ही चढती है,
किसी दूसरी वेलि को अपने पास नही फैलने देती।

४४. प्रेम की एक ही चिनगारी हृदय में पड़ जाय,
तो उस आग से पृथिवी विचलित हो सकती है, और आकाश !
धन्य है वह विरही, धन्य है वह हृदय जहाँ ऐसी आग समाई हुई है !

४५. हमारा गिरधर गोपाल तो केवल भाव का भूखा है;
न उसका राग से मतलब, न कला से,

४३

प्रीति अकेलि बेलि चढ़ि छावा;
दूसरि बेलि न सँचरै पावा।

[मुहम्मद जायसी

४४

'मुहमद' चिनगी प्रेम कै, सुनि महि गगन डिराय;
धनि बिरही औ धनि हिया, जहँ असि अगिनि समाय।

[मुहम्मद जायसी

४५

गिरधरलाल तो भाव का भूका;
राग कला नहिं जानत 'तुका'।

[तुकाराम

: ४ :

"मन्दिर-मसजिद एक"

१. हिन्दू चिपटे हैं मन्दिर से, और मुसलमान अपनी मसजिद से,
पर हमारी लगन तो उसी एक अलख निरजन से लगी है,
हमारी प्रीति तो सदा उसी एक प्रीतम प्यारे से है।

२. न वहाँ हिन्दू का मन्दिर है, न मुसलमान की मसजिद;
वहाँ तो बस, नगी आत्मा-ही-आत्मा है।
वहाँ न कोई राह है, न कोई रीति।

३. मूर्ख, जिसे तूने बनाकर खडा किया है, उस मन्दिर की तो तू
बडे जतन से रखवाली करता है;
और जिस रतन-जैसे प्रत्यक्ष प्राणी को प्रभुने रचा है,
उसे मूर्ख, तू नष्ट कर रहा है!

४. मनुष्य की बनाई मसजिद को तो झुक-झुककर सलाम करता है—
और जिसे, खुद खुदाने खडा किया है, उसको अय मुसलमान,
तू ढा रहा है!

५. मालिक का रगमहल तेरे इस दिल के ही अन्दर है;
और तेरी यह काया उसकी पाक मसजिद है।

६. तेरा मन है माधव की मथुरा, और तेरा दिल है कृष्ण की द्वारिका,
और यह काया है विश्वनाथ की काशी।
निरजन ज्योति को पहचानना है,
तो तू सहज ध्यान के दसवे द्वार को जाकर खटखटा।

: ४ :

"मन्दिर-मसजिद एक"

१

हिन्दू लागे देहरे, मूसलमान मसीति;
हम लागे एक अलख सों, सदा निरंतर प्रीति ।

[दादूदयाल

२

ना तहँ हिन्दू-देहरा, ना तहँ तुरक-मसीति;
'दादू' आपै-आप है, तहा न राह, न रीति ।

[दादूदयाल

३

आप चिणावै देहरा, जिसका करहि जतन;
परतख परमेसुर किया, सो भानै जीवरतन ।

[दादूदयाल

४

मसीत सँवारी माणसा, तिसकू करै सलाम;
ऐन आप पैदा किया, सो ढाहै मूसलमान ।

[मलूकदास

५

महल मियां का दिल हि में, औ मसजिद काया;

[मलूकदास

६

मन मथुरा, दिल द्वारिका, काया कासी जानि;
दसवां द्वारा देहरा, तामें जोति पिछानि ।

[कबीर

७. मेरे बन्दे, मुझे तू यहाँ कहाँ खोज रहा है ?
देख, मैं तो तेरे पास ही हूँ ।
न मैं मन्दिर में मिलूँगा, न मसजिद में—
और न मुझे तू कावे में पायेगा, न कैलाश में ।

८ मुसलमान अपने खुदा का ठौर मसजिद मे बताते हैं;
और हिन्दुओ के राम का वास मन्दिर में सुनते हैं ।
पर वहाँ, किसकी मालिकी है—खुदा की या राम की,
जहाँ न मसजिद है, न मन्दिर ?
क्या वह जगह प्रभु से खाली है ?

९ तेरे खुदा का मकान मसजिद है, तो और सारा मुल्क किसका है ?
तीर्थों मे और मूर्तियो में किसने देखा कि वहाँ राम बसते है ?
कहते हैं, पूरब दिशा में हिन्दुओ के हरि का वास है—
और, पच्छिम तरफ अल्लाह का मुकाम है;
पर, ज़रा तू अपने दिल में तो खोज—
अरे, यही राम है, और यही रहमान ।

१० मसजिद के अन्दर ही अगर अल्लाह है, तो और जगह क्या खाली ही पडी है ?
और अगर नमाज़ पढने के चार ही वक्त है, तो और सब वक्त क्या चोरो के है ?
जनार्दन का बन्दा मै ऐसा नही मानता—
मेरा खुदा तो क्या ज़मीन क्या आसमान हर जगह मौजूद है ।

७

मोको कहा ढूंढ़ै बंदे, मैं तो तेरे पास में;
ना मैं देवल, ना मैं मसजिद, ना काबे कैलास में।

[कबीर

८

तुरक मसीति देहरे हिन्दू,
दुहुंठां राम खुदाई ।
जहां मसीति देहरा नाहीं,
तहँ किसकी ठकुराई ?

[कबीर

९

जो रे, खुदा मसजिद में बसत है,
और मुलक किस केरा ?
तीरथ मूरत रामनिवासा,
दुहुँ में किनहुँ न हेरा ।
पूरब दिसा हरी का बासा,
पच्छिम अल्लह-मुकामा;
दिल ही खोजि दिलै-दिल भीतर ।
यहीं राम-रहमाना ।

[कबीर

१०

मसजिद ही में जो अल्ला खुदा,
तो और स्थान क्या खाली पड़ा ?
चारों वक्त नमाजों के,
तो और वक्त क्या चोरो के ?
'एका' जनार्दन का बंदा
ज़मीन-आसमान भरा खुदा । [एकनाथ

११. हिन्दू पूजते हैं अपने मन्दिर को, और मुसलमान अपनी मसजिद को;
पर मै तो उस मानव-देवता को पूजता हूँ,
जो नज़र के सामने खाता है, नजर के सामने पीता है।

१२. मुसलमान तो दौडता है अपनी मसजिद की तरफ,
और हिंदू अपने मन्दिर की ओर—
किन्तु इस घट के अन्दर जो अलख पुरुष बैठा है,
उसका दरवाजा, हाय! कोई नही खटखटाता!

१३. मत बनाओ ये ऊँची-ऊँची मसजिदे;
हाँ, रोज़े भी झूठे, और तुम्हारी ईद भी झूठी;
सच्चा तो एक उस अल्लाह् का नाम है,
उसीको तुम झुक-झुककर सलाम करो।

१४. सतगुरुने हमें दिखा दिया कि, 'यह दिल ही मसजिद है, और दिल ही मन्दिर।'
अल्लाह् के बन्दे, सेवा या बन्दगी तू दिल के अन्दर ही कर,
दिल का उपासनागृह छोडकर बाहर कहाँ भटक रहा है!

१५. धर्मशाला में तो रहने लगे हैं डाकू, और ठाकुरद्वारे में ठगो का गिरोह,
और मसजिद मे बदमाशो की टोली।
अत. अल्लाह् के आशिक अलग ही रहते है।

११

हिंदू पूजै देहरा, मुसलमान महजीद;
'पलटू' पूजै बोलता, जो खाय दीद-बर-दीद ।

[पलटूदास

१२

तुर्क मसीत, देहरा हिंदू, आप-आपको धाय;
अलख पुरुष घट भीतरे, ताका द्वार न पाय ।

[कबीर

१३

जिन दुनिया में रचो मसीद;
झूठे रोज़ा, झूठी ईद ।
साँच एक अल्ला का नाम,
तिसको नय-नय करो सलाम ।

[कबीर

१४

यह मसीत, यह देहरा, सतगुरु दिया दिखाइ;
भीतर सेवा-बंदगी, बाहर काहे जाइ !

[दादूदयाल

१५

'बुल्ला' धर्मसाला विच धाड़नी रहंदे,
ठाकुरद्वारे ठग्ग;
मसजिदां विच कोस्ती रहंदे,
आशिक रहन अलग्ग ।

[बुल्लेशाह

: ५ :

"बुंदहि समुँद समान"

१. उस अजब त्रिवेणी के तट पर
आज मेरी अनहद-बांसरी बज रही है;
शून्य-मंडल में गम्भीर गर्जन हो रहा है—
और मैं वहाँ छतीसो राग-रागिनियाँ सुन रहा हूँ।

२. 'सत्' के रग-महल में बैठी हुई
मेरी सुरत-सुन्दरी, देखो, कैसा मधुर गीत गा रही है !
सत्-नाम के अनुराग-रग मे विभोर उसकी वह तान
मन को, देखो, आज किस तरह मोह रही है !

३. स्वामी की अनुपम छवि देखी,
और दुख-दर्द सारा दूर हो गया;
और शाश्वत सुख प्रकाश में आ गया—
कोटि-कोटि सूर्य के समान
स्वामी के रूप का वह प्रकाश है ही ऐसा।

४. उजेला हो-हो जाता है—पर बिजली का पता नहीं।
झीनी झीनी फुही पड़ रही है—पर मेह का कही नाम नही।
यह अजब रस-बरसा देख-देखकर
मन-ही-मन मेरा मग मगन हो रहा है।

५. अतर आखिर किस तरह जगमगा रहा है ?
न कही दिया दिखाई देता है, न बत्ती, न तेल।
यह सब उस प्यारे खिलाड़ी का ही खेल है,
जिसके नूर से ये तमाम आत्माएँ जगमग हो रही है।

: ५ :

"बुंदहि समुँद समान"

१

बाजत अनहद बाँसुरी तिरबेनी के तीर;
राग छतीसो होइ रहे, गरजत गगन गँभीर।

[यारी

२

गावै सुरत-सुंदरी बैठी सत-अस्थान;
'जन दूलन' मनमोहिनी नाम सुरंगी तान।

[दूलनदास

३

पिय का रूप अनूप लखि, कोटि भानु-उँजियार;
'दया' सकल दुख मिटि गया, प्रगट भया सुख-सार।

[दया बाई

४

बिन दामिनि उँजियार अति, बिन घन परत फुहार;
मगन भया मनुवाँ तहाँ, 'दया' निहार-निहार।

[दया बाई

५

जगमग अन्दर में हिया, दिया न बाती तेल;
परम प्रकासक पुरुष का कहा बताऊँ खेल।

[तुलसी साहिब

६. यह अजब बात किससे कहूँ ।
हाँ-हाँ, एक ही बूँद मे तो सारा समन्दर समाया हुआ है !
पिंड के अंदर ही ब्रह्म और ब्रह्माड का खेल देख जाओ न ।
किंतु जो ढूँढने गया, वह खुद लापता हो गया—
अतर-खोजी खुद ही उस खेल में खो गया !

७. अब मिला हमें अपना सुन्दर देश, अपना खास घर !
मेरा खेड़ा ऊँचे पर है ।
मेरे मन को हर लिया है इस देशने ।
इस शहर का नाम बेगमपुर है ।
यहाँ न कोई फिक्र है, न अँदेशा ।
न कोई यहाँ यातना देता है, न धिक्कार,
और न यम की मार पडती है ।

८. सुरत-सुदरी भी गजब के तेज की,
और प्रीतम भी अद्‌भुत अनुपम तेज का ।
परम तेज की सुदर सेज पर
बारहमासी बसत की यह कैसी अजब बहार है !

९. उस देश में प्रभु के प्यारे सदा ही फाग खेलते हैं;
और हमेशा वहाँ प्रेम के फूलो की बरसा होती है ।
यह अद्‌भुत लीला कोई बडभागी ही देख पाता है ।

१०. रसभुमि पर ही रस की बरसा होगी—
और, कोटि-कोटि धाराओ से होगी ।
साधना तब है, जब वहाँ भी यह मन अचचल रहे,
बारहमासी बसंत का रस लूटते तभी बनेगा ।

११. मेरे माथे पर पैर रखकर,
आओ न स्वामी, मेरे हृदय-मंदिर में ।
आओ, तुम मेरी अतर की सेज पर पौढो,
और मैं तुम्हारे प्यारे-प्यारे चरण चाँपूँ ।

६

बुंदहि समुंद समान, यह अचरज कासो कहो ?
जो हेरा सो हिरान, ' 'मुहमद' आपुहि आपु महँ ।

[जायसी

७

अब हम खूब वतन घर पाया,
ऊँचा खेड़ा सदा मेरे भाया ।
बेगमपूर सहर का नाम,
फिकर अँदेस नहीं तेहि ग्राम
नहिं तहँ साँसत लानत मार,

८

तेजपुंज की सुन्दरी, तेजपुंज का कंत;
तेजपुंज की सेज पर, 'दादू' बन्या बसंत ।

[दादूदयाल

९

पुहुप प्रेम बरषै सदा, हरिजन खेलैं फाग;
ऐसा कौतग देखिये, 'दादू' मोटे भाग ।

[दादूदयाल

१०

रस ही में रस बरषिहै, धारा कोटि अनंत;
तहँ मन निहचल राखिये, 'दादू' सदा बसंत ।

[दादूदयाल

११

मस्तक मेरे पाँव धरि, मंदिर माहें आव;
सइयाँ सोवो सेज पर, 'दादू' चंपै पाँव ।

[दादूदयाल

१२. ऐसा वह दीवानो का देश है—
जो वहाँ जाता है, वही मतवाला हो जाता है ।
बिना मदिरा पिये ही वहाँ के निवासी अलमस्त झूमते हैं,
जन्म और मरण दोनो से ही वे मुक्त है ।
करोडो दिव्य चन्द्र-सूर्यों का प्रकाश है वहाँ—
वहाँ तुम्हारे इस चन्द्र और इस सूर्य का प्रवेश नही ।
बिना ही सीप के वहाँ अनमोल मोती निपजते है ।
उस नभ में अनगिनती बिजलियाँ कौधती है ।
बिना ही ऋतु-आगम के वहाँ फूल फूले रहते है,
और फलो में अमृत-रस भरा रहता है ।
सदा पवन के मद-मद झकोरे वहाँ आते है,
यद्यपि वहाँ पवन की गति नही ।
और बिना ही बादलो के मेह की झडी लगी रहती है ।
भौरे उस अगम देश को अनहद की गूँज से भर रहे है ।
कभी संख बज उठता है, कभी पखावज,
और कभी घटो की घनघनाहट सुन पड़ती है,
तो कभी मुरली की ताल स्वर-लहरी;
कभी दुदुभी गर्जती है, कभी नगाडे;
सिद्धियो की गर्जना भी कितनी गभीर है ।
और वह नृत्य और वह घुंघरुओ की झनकार !
बिना पाव की रभा अप्सरा वहाँ नृत्य करती है,
और बिना ही नूपुर के ठनकार उठती है !
सतगुरु की कृपा से ही
ऐसी मुक्ति-नगरी की झाँकी मिल सकती है ।
जिसने उन चरणो का स्पर्श पा लिया,
उसका आवागमन का बंधन कट गया ।

१२

ऐसा देस दिवाना रे लोगो !
जाय सो माता होय;
बिन मदिरा मतवारे झूमें,
जन्म-मरन-दुख खोय।
कोटि चन्द-सूरज-उँजियारो,
रवि-ससि पहुँचत नाहीं;
बिना सीप मोती अनमोलक,
बहु दामिनि दमकाहीं।
बिन रितु फूले फूल रहत हैं,
अमरत-रस फल पागे;
पवन-गवन बिन पवन बहत हैं,
बिन बादर झरि लागे।
अनहद-सबद, भँवर गुंजारें,
संख-पखावज बाजें;
ताल-घंट-मुरली घन घोरा,
भेरि-दमामे गाजें।
सिद्धि-गर्जना अति ही भारी,
घुंघरू-गति झनकारें;
रंभा नृत्य करें बिन पगसूं,
बिन पायल ठनकारें।
गुरु सुकदेव करें जब किरपा
ऐसो नगर दिखावें;
'चरनदास' वा पग के परसे
आवागमन नसावें।

[चरनदास

१३. कोई चतुर साधु ही इस भेद को जानता है—
कि वह माली, वह मेरा मोहनमाली
इस वाडी की हर पत्ती व हर फूल में समाया हुआ है ।
यह काया ही तो उस मोहनमाली की वाडी है,
इसीके भीतर उसने अपना अद्भुत रास रचा है ।
सेवक के साथ खेल खेलना था न,
तभी तो वह दयालु स्वामी इस वाड़ी में पधारा है ।

१४. प्रेमरस की लहराती हुई पालकी पर
मेरी सुरत-सुदरी आकर बैठ जाती है ।
और स्वामी के साथ ऐसा रग खेलती है,
कि वह अगम सुख कहा नही जाता ।

१५. अय रँगीली जीवात्मा !
तुझे किसीसे यारी करनी ही है, तो हरि से यारी कर ।
इस यारी से विषय-विकारो के विघ्न छूट जायँगे,
और तू तुरत ससार-सागर से तर जायगी ।

१६. कहो, किससे पटतर दूँ ?
वह नूर तो उसीके नूर-सा है,
वह तेज तो उसीके तेज-सा है,
और वह ज्योति उसीकी ज्योति जैसी है ।
अहा ! रहस्य की सुख-सेज पर—
साईं अपने नूर का कैसा सुन्दर खेल खेल रहा है !

१३

मोहनमाली सहज समाना;
कोई जाणै साध सुजाना।
काया-वाडी माहै माली,
तहँवा रास बनाया;
सेवक सो स्वामी खेलन कौं
आप दया करि आया।
बाहर-भीतर सर्व निरतर
सब में रह्या समाई;
परगट गुप्त, गुप्त पुनि परगट,
अविगत लख्या न जाई।
ता माली की अकथ कहानी,
कहत कही नहि आवै;
अगम अगोचर करै अनन्दा
'दादू' ये जसु गावै। [दादूदयाल

१४

प्रेम-लहर की पालकी, आतम बैसै आइ;
'दादू' खेलै पीव सौं, यह सुख कह्या न जाइ। [दादूदयाल

१५

सुन सुरत रंगीली हो, कि हरि-सा यार करो;
छूटै विघन-विकार कि भौजल तुरत तरौ। [चरनदास

१६

नूर सरीखा नूर है, तेज सरीखा तेज;
जोति सरीखी जोति है, 'दादू' खेलै सेज।

[दादूदयाल

१७. अय पक्षी, तू तो उडता चल, और उस आकाशमडल पर चढजा—
जहाँ न चद्र है, न सूर्य, न रात है, न दिन—
उस अगम अमरपुरी मे जो गया, सदा के लिए वही बस गया।
वहाँ सदा ऊँचे-ऊँचे ही वह देखता है,
और उस ऊँचाई को कौन माप सकता है ?
वहाँ न कोई हर्ष है, न शोक—न मृत्यु का कोई त्रास है,
और अय विहग, वहाँ न किसी बहेलिये का ही जाल है।
वहाँ तुझे सदा ही दिव्य प्रकाश का अमृतफल चखने को मिलेगा।

१८. मुझे अब यह नैहर का रहना अच्छा नही लगता।
मेरे साईं की नगरी कितनी सुन्दर है !
जहाँ जाकर फिर कोई लौटता नही।
वहाँ न यह चन्द्र है, न सूर्य, न यह पवन है, न पानी।
मेरे स्वामी के पास पहुँचा दे न कोई मेरा सँदेसा—पहुँचायेगा कोई ?
जाकर उसे सुनायेगा कोई मेरा यह अतर का दर्द ?

१९. हाँ, मैं अपने साईं की सेज देख आई हूँ—
सतगुरु की गहन गली मैंने आज देखली है।
प्रेम के उस महल में शब्द का ताला लगा है,
और वह शब्द की ही कुजी से खुलता है,
और साँकड भी वहाँ शब्द की ही है।
उस साजन-सेज पर शब्द का ही ओढौना है,
और शब्द का ही बिछौना।
और शब्द की ही चटकीली चूनरी पहनने को मिलती है।

१७

उड़-उड़ु रे बिहगम, चढ़ु अकास;
जहँ नहिं चाँद-सूर, निसि-बासर,
सदा अमरपुरी अगम बास।
देखैं उरध अगाध निरन्तर,
हरष-सोक नहिं जम कै त्रास;
कह यारी, उहँ बधिक-फाँस नहिं,
फल पायो जगमग परकास।

[यारी

१८

नैहरवा हमकाँ नहि भावै।
साईं की नगरी परम अति सुन्दर,
जहँ कोइ जाय न आवै।
चांद-सुरज जहँ पवन न पानी,
को रे, संदेस पहुंचावै,
दरद यह साईं को सुनावै।

[कबीर

१९

देख आई मैं तो साईं की सेजरिया,
साईं की सेजरिया, सतगुरु की डगरिया।
सबदहिं ताला, सबदहिं कूँचो,
सबद की लगी है जँजरिया;
सबद ओढ़ना, सबद बिछौना,
सबद की चटक चुनरिया।

[दूलनदास

२०. प्रिय के मिलन की आशा मे, यहाँ मै कबतक खडी रहूँ ?
ओह ! कितना ऊँचा है मेरे महबूब का महल !
वहाँतक मैं कैसे चढ सकूँगी ?
मैं तो मरी अब लाज के मारे—
यहाँ तो मेरा पैर ही नही ठहरता, चढती हूँ, और गिर-गिर पडती हूँ।
सँभल-सँभलकर बारबार चढती हूँ, तब कही पैर आगे थमता है।
और पूरी अनाडिन भी तो हूँ,
और यह प्रीतम का पथ बडा करारा है !
फिर यह अटपटी चाल !
ऐसे भला कैसे प्रिय से मिलन हो सकेगा ?
तू तो अब अपने अन्तर के परदे को खोलदे
और वहाँ सतगुरु के शब्दो को पैठने दे।
पगली, तेरा प्रीतम तो तुझे तेरे दिल के महल मे ही मिल जायगा।

२१. स्वामी, तुम मुझे वहाँ ले जाकर अक्षयवृक्ष के नीचे बैठाओगे—
तुम्हारी कृपा का कुछ पार !
उस वृक्ष के नीचे न धूप होगी, न छाया।
न वहाँ चन्द्र होगा, न सूर्य; न दिन होगा, न रात।
फिर प्रभात हो तो कहाँ से ?
और तुम मुझे वहाँ 'अमृतफल' चखने को दोगे।
वहाँ सुन्दर सुवासित सेज भी होगी।
स्वामी, ऐसा 'अमरपद' इस सेवक को देना,
जो युग-युग अचल बना रहे—
इतनी ही हमारी विनय है, नाथ !

२२. चित्त से सुरत, तू अब शंका निकाल दे,
चल, हमारे देश में तू आनद से रह।

२०

पिया-मिलन की आस रहूँ कबलों खड़ी?
ऊँचे चढ़ि नहिं जाय मनें लज्जा भरी।
पांव नहीं ठहराय, चढ़ूँ गिरि-गिरि पड़ूं;
फिरि-फिरि चढहुँ सम्हारि तो पग आगे धरूँ।
निपट अनारी वारि तो झीनी गैल है;
अटपट चाल तुम्हारि, मिलन कस होइहै।
अन्तरपट दे खोलि, सबद उर लाव री;
दिल बिच दास कबीर, मिलै तोहि बावरी।

[कबीर

२१

अछै-बिरछ तरि लै बैठे हो
जहँवा धूप न छाहँ हो!
चांद न सुरज, दिवस नहि तहँवा,
नहिं निसि, होत बिहान हो।
अमृतफल मुख चाखन दैहो,
सेज-सुगन्ध सुहाय हो;
जुग-जुग अचल अमरपद दीजै,
इतनी अरज हमार हो।

[दरिया

२२

तू संका मत कर अब चित में;
चलो देस हमारे, रहो सुख में।

[शिवदयाल

२३. ऐसा है हमारा वह देश—
जो अंतर का भेदी हो, वही उसे जान सकेगा।
न वेद उसका पार पाता है, न क़ुरान,
कहने और सुनने से परे है वह अगम देश।
न वहाँ जात-पाँत है, न वर्ग-भेद,
न कुल है, न कोई क्रिया,
न सध्योपासन है, न कोई नियम, न आचार।
बिना ही मेह के वहाँ भारी बरसा होती है—
वह नीर न मीठा है, न खारा!
शून्य महल में वहाँ सदा नौबत बजती रहती है—
कभी किंगरी की आवाज़ आती है,
कभी वीणा की, और कभी सितार की।
और वहाँ जब ब्रह्म-दर्शन होता है,
तो यह भौतिक ज्योति चकाचौंध मे पड जाती है।
आगे वह देश अगम-अपार है।
उसी देश के हम रहवासी है
कोई गुरुमुख प्यारा सत ही उसे समझ सकता है।

२४. मेरे गगग-महल मे कैसी झडी लग रही है आज!
और कैसा गम्भीर गर्जन हो रहा है मेरे शून्य-मडल में!
बीच-बीच मे बिजली भी चमक जाती है।
रस-वर्षा की कैसी सुन्दर लहर उठ रही है!
यह अजब शोभा कहते नही बनती।
मेरे गगन-महल से अमृत झर रहा है आज!
इस प्रेमानद-प्रवाह मे कोई साधु ही नहा सकता है।
कपाट खुल गये है, अधकार सब हट गया है।
सतगुरु को धन्य है, धन्य है,
जिन्होने कि यह दिव्य दृश्य सहज मे ही दिखा दिया!

२३

महरम होय सो जानै साधो,
ऐसा देश हमारा।
वेद कतेब पार नहिं पावत,
कथन-सुनन से न्यारा;
जाति-वरन कुल-किरिया नाहीं
सन्ध्या-नियम अचारा।
बिन जल-बूंद परत जहँ भारी,
नहिं मीठा नहिं खारा;
सुन्न-महल्ल में नौबत बाजै,
किंगरी बीन सितारा।
जोति लजाय ब्रह्म जहँ दरसै
आगे अगम अपारा;
कह कबीर, वहँ रहनि हमारी,
बूझै गुरुमुख प्यारा।

[कबीर

२४

झरि लागी महलवा, गगन घहराय।
खन गरजै, खन बिजुरी चमकै,
लहर उठै, सोभा बरनि न जाय।
सुन्न-महल में अमृत बरसै,
प्रेम-अनन्द में साधु नहाय।
खुली किवरिया, मिटी अंधियरिया,
धन सतगुरु जिन दिया है लखाय।

[धरमदास

२५. प्यारे, तू इतना झगडा मत कर,
तुझे छोड दूसरा हमारा कौन है ?
हम बडे अँधेरे में पडे हैं कि—
अपने को हम तुझसे न्यारा समझते हैं।

२६. सजनि, खोजते-खोजते मै तो खुद ही खो गई !
समदर में बूँद समा गई—
उसे अब कैसे खोजा जाये !
सजनि, खोजते-खोजते मै खुद ही खो गई !
बूँद में समदर समा गया—
उसे अब कैसे खोजा जाये !

२७. तेरे प्रीतम का ठौर इन नदियो के उस पार है,
उसे सौगन्द खाकर वचन दिया है न कि—
'अवश्य आऊँगा।'
तो अब तू सतगुरुरूपी मल्लाह से मेल करले।

२८. हाय, मैं अभागिन क्यो सो गई !
मेरा प्रीतम तो जाग रहा है,
और मै अभागिन सो गई !
मै अपनी पाँचो (इन्द्रिय) सहेलियो के रग में रँग गई,
हाय, प्रीतम के अनुराग-रग मे अपनी अतर-चूनरी न रँगी !!

२५

तू ना कर इतना झेड़ा है,
तुझ बाझो दूजा केहड़ा है;
असाँ देख्या बड़ा अँधेरा है,
अपने आप नूँ दूजा आखीदा।

[बुल्लेशाह

२६

हेरत-हेरत हे सखी, रह्या कबीर हेराइ;
बूँद समानी समुद में, सो कत हेरी जाइ,
हेरत-हेरत हे सखी, रह्या कबीर हेराइ;
समुद समाना बूँद में, सो कत हेर्या जाइ।

[कबीर

२७

नदियो पार सजनदा ठाना,
कीजे कौल जरूरी जाना;
कुछ करले सलाह मलाहे नाल।

[बुल्लेशाह

२८

पिया मेरा जागै, मैं कैसे सोई री!
पाँच सखी मेरी सँग की सहेली,
उन रंग-रँगी, पिय-रँग न मिली री।

[कबीर

२९. मेरे राम के प्रेम-वाण कैसे पैने है—
इन वाणो का घायल ही इनकी पीर जानता है।
तन मे खोजती हूँ, मन में खोजती हूँ,
पर चोट का कही पता भी नही चलता!
अव बताओ,
दवा किस मर्म-स्थान पर घिसकर लगाऊँ ?
मुझे तो यहाँ सव नारियाँ एक ही रूप की दीखती हैं,
न जाने प्रीतम की प्यारी कौन है!
पता नही, यहाँ कौन भागवती है,
देखूँ, साजन का सुहाग किस सहेली को मिलता है!

३०. आज कितने दिनो वाद मैंने अपने प्रीतम को पाया,
मेरे भाग्य का कुछ पार,
घर-बैठे ही मेरा स्वामी मेरे आँगन में आ गया।
इस महामगल मे मेरा मन मगन हो रहा है,
अपने राम की प्रेम-रसायन को
अतर की रसना आज अतृप्त भाव से चख रही हूँ।
मेरे हृदय-मदिर मे आज अजब-सा उजेला हो गया है;
और अपने प्रीतम को लेकर
(समाधि) सेज पर मैं अलमस्त सो रही हूँ।
पर इस भाग्योदय में मेरा अपना कोई प्रयत्न नही,
सजनि, यह सव सुहाग तो मुझे मेरे रामनें दिया है।

२९

राम-बान अनियारे तीर,
जाहि लागैं सो जानै पीर ।
तन-मन खोजो चोट न पाऊँ,
औषधि-मूली कहाँ घसि लाऊँ ।
एकहि रूप दीसै सब नारी,
ना जानौं, को पियहि पियारी ।
कह कबीर, जा मस्तक भाग,
ना जानूँ काहू देइ सुहाग ।

[कबीर

३०

बहुत दिनन में मैं प्रीतम पाये,
भाग बड़े घर-बैठे आये ।
मंगलचार माँहि मन राखौं,
राम-रसायन रसना चाखौं ।
मन्दिर माँहि भया उजियारा,
लै सूती अपना पीव पियारा ।
कहै कबीर, मैं कछू न कीन्हा,
सखी, सुहाग राम मोहिं दीन्हा ।

[कबीर

: ६ :

"ब्रह्म-बीज का सकल पसारा"

१. उत्पत्ति सबकी एक ही वीर्य-बिन्दु से हुई है,
मल-मूत्र भी सबका एक-सा ही है,
चमडा भी वही है, और रक्त-मास और मज्जा भी वही,
और किरणे भी ये सब उसी ब्रह्म-ज्योति की है—
तब यहाँ कौन तो ब्राह्मण है और कौन शूद्र ?

२. अनेक भ्रमो से ग्रस्त वे नर नही, नर-पशु है,
कौन ? जिन्हे इस ऊँच-नीच के भेद-भावने जकड रखा है।

३. बताओ, तुम ब्राह्मण क्यो, और हम शूद्र क्यो ?
हमारा रक्त लोहू है—यह सत्य है,
पर तुम्हारा रक्त क्या दूध है, बाबा ?

४. तू जन्म से ही वर्णभेद का विचार करता है ?
तो ये तीनताप के दड क्यो तेरे पीछे लग गये ?
तेरा जन्म हुआ, तब तू शूद्र ही था न ?
और स्मशान भी तुझे शूद्र ही कहेगा।
तो यह कृत्रिम जनेऊ डालकर—
क्यो दुनिया में द्वन्द्व मचा रहा है ?
अच्छा! ब्राह्मणी के गर्भ से जन्म लिया है तूने!
पर जिस रास्ते से यहाँ शूद्र आते है,
उसी आम रास्ते से तो ब्राह्मणदेवता! तू भी आया है।
यह क्यो ? तू और मार्ग से क्यो नही आया ?
सुन, काली गाय का दूध दुह, और पीली का दुह—
दोनो को मिलाकर फिर अलगा सकेगा तू ?
बता सकेगा—कौन तो काली का है, और कौन पीली का ?

: ६ :

"ब्रह्म-बीज का सकल पसारा"

१

एकै बूंद, एक मल-मूतर,
एक चाम, इक गूदा;
एक जोति ते सब उत्पन्ना
को बाह्मन, को शूदा ? [कबीर

२

जबलगि ऊँच-नीच करि जाना,
ते पशुवा भूले भ्रम नाना। [कबीर

३

तुम कत बाह्मन, हम कत शूद ?
हम कत लोहू, तुम कत दूध ?
[कबीर

४

जो तू करता वरन विचारा,
जनमत तीनि डंड अनुसारा।
जनमत शूद्र, मुये पुनि शूद्रा,
कृतिम जनेउ घालि जग धुंद्रा।
जो तुम बाह्मन बह्मनी जाये,
अवर राह ते काहे न आये ?
कारी पियरी दूहहु गाई,
तिनकर दूध देहु बिलगाई।
[कबीर

५. ये अनेक रूप, और ये अनेक वर्ण
एक ही सरजनहार की रचनाएँ है ।
किन्तु एक भी वर्ण और एक भी आकृतिने
अपने कर्त्तार को न पहचाना !
बलिहारी इस वर्णभेद के अहकार की !
हाँ, द्वेष की आग से नष्ट हो जायँगे वे—
जो एक ही पिता की सतान को भेद की दृष्टि से देखते है,
वे भी नष्ट हो जायँगे—
जो एक सत्य-स्वामी को छोडकर अनेक पाखडो मे उलझे पडे है,
और उन्हे भी नष्ट हो जाना है—
जो वेद तो पढते है,
पर भेद-भाव के अन्धकूप मे पडे सड रहे है ।

६. देखो तो भला इन मूर्खो को—
नाद-विन्दु के रहस्य को न समझकर,
मिट्टी के इन घडो के ये नाम और वर्ण स्थिर कर रहे है !
किन्तु नष्ट होने पर वे इनके क्या नाम रखेगे ?
बतावे वे, है कही कोई भेद, कोई अन्तर ?
वही हड्डी है, वही खाल है, वही मल और वही मूत्र है,
सबका वही रक्त है, और वही मज्जा,
सारी सृष्टि की उत्पत्ति एक ही वीर्य-विन्दु से हुई है ।
फिर कौन तो ब्राह्मण है, और कौन शूद्र ?
जाति तो सबकी एक ही है—और वह है 'मनुष्यजाति' ।

७. ठीक, जनेऊ पहनकर तुम तो ब्राह्मण बन गये,
किन्तु पत्नी तो शूद्र ही रही, महाराज !
शूद्रा के हाथ का परोसा हुआ खाकर,
पाडेजी, क्यो अपना धर्म-कर्म डुबा रहे हो !

५

नाना रूप वरन इक कीन्हा,
चारि वरन उहि काहु न चीन्हा।
नष्ट गये, करता नहिं चीन्हा,
नष्ट गये, अवरहिं मन दीन्हा।
नष्ट गये, जिन वेद बखाना,
वेद पढ़े पै भेद न जाना।

[कबीर

६

माटी के घट साज बनाया,
नादे-बिन्दु समाना।
घर बिनसे क्या नाम धरहिगे,
अहमक, खोज भुलाना।
एकै तुचा हाड़ मल-मूत्रा,
एक रुधिर इक गूदा;
एक बिंदु ते सिस्टि कियो है,
को बाह्मन को शूद्रा?

[कबीर

७

घालि जनेऊ ब्राह्मन होना,
मेहिरहिं का पहिराया?
शूद्र जनम की आइ परोसै,
तुम पांडे क्यों खाया?

[कबीर

८. यह सारी माया ब्रह्म-वीज से ही उत्पन्न हुई है;
जाति सब कौमो की एक ही है ।
हाँ, जो सुकर्म करता है, वह ऊँच है,
और जो कुकर्म करता है, वह नीच ।

९. जगत् मे सर्वत्र एक ही ज्योति जल रही है—
एक ही पवन से, एक ही पानी से, और एक ही मिट्टी से
एक ही कुम्हारने इन विविध घडो को गढा है ।

१०. अल्लाहने एक ही नूर की उत्पत्ति की,
और उस नूर से इस खलक की सृष्टि की—
अब बताओ, कौन यहाँ ऊँच है, और कौन नीच ?

११. वह अलख निरजन तो एक ही नज़र से सबको देखता है,
उसकी दृष्टि में न कोई ऊँच है, न कोई नीच ।

१२. हर घट मे हमारा राम व्यापक है,
हर सूरत में उसीकी झलक नजर आती है ।
राजा, रक और चाडाल सबके घर एक ही दीपक जल रहा है ।

८

कौम छतीस एक ही जाती,
ब्रह्म-बीज का सकल पसारा।
ऊँच-नीच इस विधि है लोई,
कर्म-कुकर्म कहावै सोई।

[कबीर

९

एकै पवन, एक ही पानी, एक जोति संसारा;
एकहि खाक गढ़े सब भाँडे, एकहि सरजनहारा।

[गरीबदास

१०

अल्ला एक नूर उपनाया, ताकी कैसी निन्दा ?
वही नूर ते सब जग कीया, कौन भला को मन्दा ?

[कबीर

११

एकै नजर निरंजना सबही घट देखै,
ऊँच-नीच अन्तर नहीं, सब एकै पेखै।

[कबीर

१२

सब घट व्यापक राम है, देही नाना भेष;
राव-रंक-चंडाल घर, 'सहजो' दीपक एक।

[सहजो बाई

१३. हमारा दाता जब देता है, तब जाति नही पूछता;
यह ब्राह्मण है, यह क्षत्रिय है,
यह वैश्य है, और यह शूद्र—
ऐसा भेद-भाव हमारे दाता के द्वार पर थोडा ही है।

१४. हिये मे जिनके दया-धर्म है,
और जो अमृत-जैसे वचन बोलते हैं—
और नम्रता जिनके नेत्रो मे बसती है,
वे ही असल में ऊँचे और ऊँचवर्ण के है।

१५. जिन्हे तुम 'नीच' कहते हो
वे तो जगत् को पार कर गये।
सतो के चरणो की महिमा ही ऐसी है।
डूबे तो वे—
जो ऊँची कुलीनता के अभिमान में निमग्न थे!

१३

खत्री ब्राह्मन शूद्र वैस को
जाति पूछि नहिं देता दाता।

[नानक

१४

दया-धर्म हिरदै बसै, बोलै अमरत-बैन;
तेई ऊँचे जानिए, जिनके नीचे नैन।

[मलूकदास

१५

नीच-नीच सब तरि गये, सन्त-चरन-लौलीन;
जातिहि के अभिमान ते डूबे बहुत कुलीन।

[तुलसी साहिब

: ७ :

"हिन्दू-तुरक का कर्त्ता एक"

१ हमारा राष्ट्र-शरीर ऐसा है—
एक हाथ हिंदू है, दूसरा हाथ मुसल्मान;
एक पाँव हिंदू है, दूसरा पाँव मुसल्मान।
दोनो भाई दोनो कान है;
दोनो भाई दोनो नेत्र है।
हमारा राष्ट्र-शरीर ऐसा है।

२ हमने अच्छी तरह शोधकर देख लिया है,
हमें तो सर्वत्र एक ही आत्मा नजर आई।
जो आत्मा हिन्दू में है, वही मुसल्मान में है।
फिर अभेद में भेद क्यो देखते हो बाबा ?

३. वही महादेव बाबा है, वही हजरत मुहम्मद,
जो ब्रह्मा है, वही आदम है।
जब एक ही जमीन पर सबको रहना है—
तब किसे तो हिन्दू कहे, और किसे मुसलमान ?
कुरान पढनेवाले को भले ही मुल्ला कहो,
और जो वेद का पाठ करे उसे भले पडित का नाम देदो।
जुदा-जुदा नाम तुम भले ही इन सबके रखदो—
पर असल में, है तो सब एक ही मिट्टी के बर्तन !
गहने तो सब एक ही सोने के है—
नथनी और पायजेब के सोने में क्या कोई भेद है ?
यह तो यू ही दुनिया में कहने-सुनने को दो नाम दे रखे है;
असल में, नमाज और पूजा
एक ही भव्य भावना के दो जुदा-जुदा नाम है।

"हिन्दू-तुरक का कर्त्ता एक"

१

दोनों भाई हाथ-पग, दोनो भाई कान;
दोनो भाई नैन हैं, हिन्दू-मुसलमान।

[दादूदयाल

२

सब हम देख्या सोधिकै, दूजा नाहीं आन,
सब की एक हि आतमा, क्या हिन्दू-मुसलमान।

[दादूदयाल

३

वही महादेव, वही मुहम्मद,
ब्रह्मा आदम कहिए;
को हिंदू को तुरक कहावै—
एक जमीं पर रहिए।
पढ़ें कतेब वे मुल्ला कहिए—
वेद पढ़ें वे पाँडे;
बेगरि-बेगरि नाम धराये,
इक मटिया के भाँडे।
गहना एक कनक तें गहना;
इन माँह भाव न दूजा,
कहन-सुनन को दुइ करि थापे
सोइ नमाज सोइ पूजा।

[कबीर

४. जो हिंदू का नाथ है वही मुसल्मान का भी है;
ये मुल्ले और ये शेख भेद-भाव डालकर आखिर करेगे क्या ?

५ एक हिन्दू—दूसरा मुसल्मान !
न जाने, ये दो नाम कैसे पड गये !

६. आये तो सब दुनिया मे एक ही सदर दरवाजे से है।
बस, यह दुई भर दूर करनी है, फिर कोई झगडा नही,
हिन्दू और मुसलमान मे फिर कोई भेद नही।

७. आज मेरा वह भ्रम दूर हुआ।
अब अल्लाह औ' राम को अभेद की दृष्टि से देखता हूँ।
मेरे लिए हिंदू और मुसलमान दोनो अब एक ही है—
दोनो में ही प्रभो, मै तेरा दीदार पाता हूँ।
हिंदू और मुसलमान के प्राण औ' पिड में क्या कोई भेद है ?
दोनो में वही रक्त है और वही मास।
न आँखो में कोई अन्तर है, न नाक मे।
सहज ही तूने यह अजब लीला रच डाली !
कान सबके एक-समान ही शब्द सुनते है,
भूख सबको एक-सी ही व्यापती है,
मीठा-खट्टा सबकी जीभ को एक-सा ही लगता है।
हर घट की रचना में एक ही युक्ति दिखाई देती है—
वही सधि, वही बधन !
हाथ-पैर जैसे हिंदू के है, वैसे ही मुसलमान के;
एक-से शरीर है—एक-सा सुख है, एक-सा दुख है।
खालिक धन्य है तेरा यह अजब खेल !
धन्य है कर्त्तार, तेरी यह मोहिनी लीला !
तूने यह अद्वितीय अनुपम एकाकार किया है।
तेरी यह युक्ति जानी, तभी मेरे प्राणो को प्रतीति हुई।

४

हिन्दू-तुरक का साहिब एक,
कहा करै मुल्ला, कहा करै सेख। [कबीर

५

कैसे हिन्दू तुरक कहाया,
सब ही एकै द्वारे आया। [कबीर

६

दुई दूर करो, कोई सोर नहीं,
हिन्दू-तुरक कोई होर नहीं। [बुल्लेशाह

७

अल्लाह-राम छूटा भ्रम मोरा;
हिन्दू-तुरक-भेद कुछ नाहीं, देखूँ दरसन तोरा।
सोई प्राण पिंड पुनि सोई, सोई लोहू माँसा;
सोई नैन, नासिका सोई, सहजैं कीन्ह तमासा।
स्रवणौ सबद बाजता सुनिए, जिभ्या मीठा लागै;
सोई भूख सबन को व्यापै, एक जुगति सोई जागै।
सोई संध-बंध पुनि सोई, सोई सुख सोइ पीरा;
सोई हस्त पांव पुनि सोई, सोई एक सरीरा।
यह सब खेल खालिक हरि तेरा, तू ही एक करि लीन्हा;
'दादू' जुगति जानि करि ऐसी, तब यह प्राण पतीना।
[दादूदयाल

८. हिंदू और मुसलमान को मै दो नही समझता,
स्वामी तो सबका वही है—कोई दूसरा मुझे दिखाई ही नही देता।
अभेद की दृष्टि से भेद को भला कैसे देखूँ ?

९ न हम हिंदू बनना चाहते है, न मुसलमान,
और न हम तुम्हारे छह शास्त्रो के पचडे मे पड़ेगे।
हम तो अपने रहमान प्यारे के रग मे रँगे हुए है।

१०. न हम हिंदू होना चाहते है, न मुसलमान,
और न इन छह शास्त्रो के साथ रहना चाहते है।
हम तो निष्पक्ष होकर अपने राम के गुण गायेंगे।

११ अरे भोदू, चेतजा, अब भी चेतजा—
क्यो नाहक हिंदू-मुसलमान मे भेद करता है ?
देख, बोलनहारी आत्मा न मुस्लिम है न हिंदू।

१२ जो हिंदू का सरजनहार है, वही मुसलमान का भी है।
धन्य है हमारा अलख कर्त्तार !

१३. जहाँ भी देखता हूँ, अल्लाह ही हर घट में छुपा बैठा है।
वही हिंदू के अदर है, वही मुस्लिम के अंदर।
'कबीर' पुकार-पुकारके कहता है—
"हर घट में उसी प्रीतम की परछाई पड रही है।"

८

हिन्दू तुरक न जानौं दोई;
साईं सब का सोई है रे, और न दूजा देखूं कोई।

[दादूदयाल

९

ना हम हिन्दू होहिंगे, ना हम मूसलमान;
षट दरसन में हम नहीं, हम राते रहमान।

[दादूदयाल

१०

हिन्दू तुरक न होइबा, साहिब सेती काम;
षट दरसन संग न जाइबा,, निर्पख कहिबा राम।

[दादूदयाल

११

कहै कबीर, चेत रे भोंदू!
बोलनहारा तुरक न हिन्दू।

[कबीर

१२

हिन्दू तुरक का कर्त्ता एक--
ताकी गति लखी न जाई।

[कबीर

१३

अल्ला गुँब सकल घट भीतर,
हिरदै लेहु विचारी।
हिन्दू-तुरक दुहूँ महँ एकै,,
कहै 'कबीर' पुकारी।

[कबीर

१४. तुम तो राम को ही हर घट में देखो।
न कोई हिंदू है, न कोई मुसल्मान—
यह रचना तो सारी राम-रहमान की है।

१५. न तू सुन्नत करा—न तू जनेऊ पहन;
फिर देखें, कौन तुझे मुसल्मान कहता है,
और कौन कहता है तुझे द्विज।
यह सारा तफरिका तो इस सुन्नत और जनेऊने डाल रखा है।

१४

कहहि 'कबीर' राम रमि रहिए,
हिन्दू-तुरक न कोई ।

[कबीर

१५

कर मति सुन्नति और जनेऊ;
हिन्दू-तुरक न जाने भेऊ ।

[कबीर

: ८ :

"सो ब्राह्मण, जो ब्रह्म विचारै"

१. निर्दय, जहाँ पर तू धर्म का प्रवचन करता है,
वही तू मूक पशुओ की बलि चढ़ाता है।
कैसा घोर कुकर्म कर रहा है तू।
अरे, तुझे हम ब्राह्मण देवता कहे।
तो फिर बता, कसाई किसे कहे?

२. लो, ये परमपवित्र माने जाते है, उच्च कुलोत्पन्न कहे जाते है,
और सभा मे भी इनकी भारी मान-प्रतिष्ठा है।
इनसे सभी जा-जाकर मन्त्र-दीक्षा लेते है!
पर मुझे तो भाई, इन्हे देखकर बडी हँसी आती है।
ये गीता-भागवत सुनाते है—
इसलिए कि, लोगो के पाप कट जाये,
पर कर्म कराते है यह नीच-से-नीच।
हमने तो कथा-वाचक और श्रोता, दोनों को ही डूबते देखा है—
यमदूतो को उनकी गर्दन पकड़े ले जाते देखा है।
जो गाय मारते है, उन्हे तो तुम मुसल्मान कहते हो,
पर उनसे तुम्हारे यह ब्राह्मण क्या कुछ कम है?
कितने नीचाचारी है ये कलियुगी ब्राह्मण!!

३. जगत का गुरु ब्राह्मण भले हो—
प्रभु के भक्तो का गुरु वह नही हो सकता।
उस विद्याभिमानी को तो
चार वेदो के झाड-झखाड़ मे ही उलझ-उलझकर मरने दो।

"सो ब्राह्मण, जो ब्रह्म विचारै"

१

धरम कथै तहँ जीव बधै तू,
अकरम करै मेरे भाई;
जो तोहरा को ब्राह्मण कहिए,
काको कहिए कसाई ? [कबीर

२

अति पुनीत ऊँचे कुल कहिए,
सभा माँहि अधिकाई;
इनते दीच्छा सब कोउ माँगै,
हँसि आवै मोंहि भाई !
पाप-कटन को कथा सुनावैं,
कर्म करावैं नीचा;
बूड़त दोउ परस्पर देखा,
गहे हाथ जम घींचा।
गाय बधै तेहि तुरका कहिए
उनसे वे क्या छोटे ?
कहहि कबीर, सुनो हो संतो,
कलि के बाह्मन खोटे। [कबीर

३

ब्राह्मन हो गुरु जगत का, भगतन का गुरु नाहिं;
उरझि-उरझिके पचमुआ, चारहु वेदनि माँहि। [कबीर

४. हाँ, ब्राह्मण वही, जो ब्रह्म को पहचानता है;
[१]विषयो से खीचकर इन्द्रियो को जो अतर्मुखी कर लेता है।
जिसने पाँचो इन्द्रियो को जीत लिया है,
जो कभी असत्य नही बोलता—
जिसने अतर मे दया का जनेऊ धारण कर रखा है,
जो अध्यात्म-विद्या पढता है और पढाता है,
और निरतर परमात्मा के ध्यान में निमग्न रहता है।
जो न काम के वश होता है, न क्रोध के,
मद और लोभ को जिसने हृदय से खदेड दिया है—
'चरणदास' की दृष्टि मे, वही जितेद्रिय पुरुष ब्राह्मण है।

५. ब्राह्मण बताओ, किसे कहे ?
उसे जो निरतर ब्रह्म का विचार करे।

---

१ यदा संहरते चायं कूर्मोऽगानीव सर्वशः [गीता २-५९

४

ब्राह्मण सो जो ब्रह्म पिछानै;
बाहर जाता भीतर आनै।
पाँचो वस करि झूठ न भाखै;
दया-जनेऊ अन्तर राखै।
आतम-विद्या पढ़ैपढ़ावै;
परमातम में ध्यान लगावै।
काम-क्रोध-मद-लोभ न होई;
'चरणदास' कहै, ब्राह्मण सोई।

[चरणदास

५

सो ब्राह्मण, जो ब्रह्म विचारै।

[कबीर

: ९ :

"पीर सबन की एक-सी"

१. रक्त-मास तो एक-सा ही सबका है,
यह हमारा नही, खुद सृष्टा का कथन है,
बकरी हो या गाय, या अपनी सतान ही हो,
रक्त मास सबका एक ही है।
पीर और पैगम्बर और औलिये सब मरने को ही यहाँ आये हैं,
फिर इस देह का पोषण करने के लिए,
जो खुद मर्त्य है, क्षणजीवी है,
क्यो किसी प्राणी का व्यर्थ वध किया जाय?

२. मुल्ला, कालिख पोतदे इस खूनी छूरी पर,
दिल से निकालदे जिबह् करने का काला ख़याल।
ये सारी सलोनी सूरते अल्लाह् की ही तो है—
मुल्ला, क्यो गरीब प्राणियो को जिबह् कर रहा है?

३. मूर्ख, अपनी खुदी का तो खून करता नही,
दूसरो का वध करने चला है!
वगैर खुदी को ज़िवह् किये भला खुदा मिल सकता है?

४. मूर्ख, तू समझता नही?
पीर तो सब को एक-सी ही होती है;
पाँव मे तेरे काँटा कभी चुभा है, पीड़ा कभी हुई है?
फिर भी तू गरीब प्राणियो की गरदन पर छुरी चलाता है!

: ६ :

"पीर सबन की एक-सी"

१

क्या बकरी क्या गाय है, क्या अपना जाया,
सब का लोहू एक है, साहिब फरमाया।
पीर पैगम्बर औलिया सब मरने आया,
नाहक जीव न मारिये पोषन को काया।

[नानक

२

काला मुहुँ कर करद का, दिल से दूरि निवार;
सब सूरत सुबहान की, मुल्ला मुग्ध न मार।

[दादूदयाल

३

आपन को मारै नहीं, पर को मारन जाइ;
'दादू' आपा मारे बिना, कैसे मिलै खुदाइ।

[दादूदयाल

४

पीर सबन की एक-सी, मूरख जानत नाहिं;
काँटा चूभै पीर है, गला काटि को खाइ।

[मलूकदास

५. हाथी मे, चीटी में, पशु में और मनुष्य में,
सब मे एक ही आत्मा है, एक ही परमात्मा है।
खुदा के गले पर छूरी फेरता है,
और तिस पर शूरमाओ में अपनी गिनती कराता है !

६. अगर कहते हो कि सब मे एक ही खुदा है,
तो इस गरीब मुर्गी को जिबह क्यो करते हो ?

७. क्यो मारते हो किसी गरीब जीव को—
जान जब सब की एक-सी ही है ?
भले ही तुम करोड़ो बार वेद-पुराण सुनो,
जीव-हत्या के पाश से मुक्त होने के नही।

८. माना कि तूने करोडो गायो का दान किया है,
और काशी में 'करवत' लेकर मरने का तेरा सकल्प है;
पर तू नरक-वास से बचनेवाला नहीं।
ठीक, तूने मछली का रत्तीभर ही मांस खाया है,
पर सजा तो तुझे पूरी ही भोगनी पड़ेगी।

९. शास्त्र पढ-पढकर तू जीवो का वध करता है;
पशुओ के सिर काट-काटकर निर्जीव मूर्त्तियो के आगे चढाता है !

१०. खाना तो सतोष का खिचडी का है—
जिसमें, बस, ज़रा-सा नमक पडा हो,
दूसरो का मास खा-खाकर,
कयामत के दिन भला कौन अपना गला कटायेगा ?

५

कुंजर चींटी पशु नर, सब में साहिब एक;
काटै गला खुदाय का, करै सूर मां लेख।

[मलूकदास

६

सब में एक खुदा ही कहत हो,
तो क्यो मुरगी मारो?

[कबीर

७

जिव मति मारो बापुरा, सब का एकै प्रान;
हत्या कबहुं न छूटिहै, कोटिन सुने पुरान।

[कबीर

८

तिलभरि मच्छी खाइकै, कोटि गऊ करि दान;
काशी करवत लै मरै, तो भी नरक निदान।

[कबीर

९

पढ़िकै शास्त्र जीव-बध करई,
मूंड़ि काटि अगमन के धरई।

[कबीर

१०

खुश खाना है खीचडी, पड़ा हुआ टुक नौन;
मास पराया खाइकै, गला कटावै कौन।

[कबीर

२१. रक्त-मास तो सब का एकसार ही है,
जैसा पशु का मास, वैसा ही मनुष्य का मास।
किन्तु मानव का मास चाव से सियार भी नहीं खाता;
ऐसा निरुपयोगी है नर का मास।
उसके पोषण के लिए पशुओ का मास खाते है
रसना के दास ये मूढ मानव !
उस कुशल कुंभकारने पृथिवी पर असख्य घटो को सरजा है;
क्यो न उत्पत्ति के साथ ही उनका विनाश हो गया ?
मास-मछली तुम्हारे खेत की उपज है क्या ?
तब अवश्य तुम अपना बोया धान्य काटकर खा सकते हो।
तुमने मिट्टी की देवी बनाई, और मिट्टी का देव—
और लगे उन्हे सच्चे जीवो की बलि देने !
तुम्हारे बनाये देवी-देवता सत्य हैं,
तो वे खेत में चरते पशुओ को खुद पकड़कर खा जायें।
राम का भजन करो; जीभ की गुलामी छोडो।
उस दिन की भी कुछ खबर है तुम्हे ?
वहाँ गरदन के बदले गरदन देनी पडेगी।
हिंसा जननी है; प्रतिहिंसा उसकी पुत्री।

१२. हिन्दूने दया छोडदी, मुसलमानने मेहर;
दोनों ही घट आज खाली पड़े है !
पशु-हत्या को एक कहता है हलाल, और दूसरा झटका—
मगर आग तो दोनो ही खूनियो के घरो में लगी है !

११

जस मांस पसु का तस मांस नर का
रुधिर-रुधिर इकसारा;
पसु का मांस भखैं सब कोई,
नरहिं न भखै सियारा ।
ब्रह्म कुलाल मेदिनी भइया,
उपजि बिनसि कित गइया;
मांस-मछरिया तौपै खइये,
जौ खेतन में बोइया ।
माटी के करि देवी-देवा,
काटि-काटि जिव देइया;
जो तुहरा है साँचा देवा,
खेत चरत क्यों न लेइया!
कहत कबीर, सुनहु हो संतो,
राम नाम निज लेइया;
जो किछु कियहु जीभ के स्वारथ,
बदल पराया देइया ।

[कबीर

१२

हिंदू की दया, मेहर तुरकन की
दूनो घट सो त्यागी;
वै हलाल, वैं झटका मारैं,
आग दूनो घर लागी ।

[कबीर

१३. अहमक, तेरी नादानी का कुछ पार !
गाय को बरबस पकडके पछाड दिया,
और उसकी गरदन पर चट से छूरी फेरदी;
और फिर जीवित को मृतक करके कहता क्या है—
'अब यह हलाल हुआ !'
जिस मास को तू पाक कहता है,
उसकी उत्पत्ति भी जानता है ?
रज-वीर्य से उत्पन्न अपवित्र मांस है वह !
नादान, नापाक चीज़ को पाक बता रहा है !
कहता क्या है—'हमारे बुज़ुर्गोंने यह चलाया है ।'
जिसने तुझे यह मास-भक्षण का उपदेश दिया है,
उसका भी एक दिन खून होगा—
और तेरी गरदन पर तो छूरी चलेगी ही ।

१४. तेरा दिल दया से अगर खाली है, तो—
तेरा मक्का भी झूठा, और मदीना भी झूठा,
और तेरा बदरी-केदार जाना भी बेकार ।

१५. मांस तो सब का एक-सा ही है—
चाहे वह मुर्गी का हो, चाहे हिरनी का, चाहे गाय का,
मास-भक्षी को अवश्य एक दिन नरक-यात्रा करनी पड़ेगी ।

१६. मुल्ला, मुझ गरीब मुर्गी को तू आज भले ही ज़िबह कर,
मगर उस दिन की भी कुछ खबर है ?
मालिक जब कर्मों का हिसाब माँगेगा,
तू आफत में पड जायगा ।

१३

बरबस आनिकै गाय पछारी—
गला काटि जिव आपु लिया।
जीयत ही मुरदा करि डारा,
तिसको कहत हलाल हुआ !
जाहि मास को पाक कहत हो
ताकी उतपति सुनु भाई !
रज-बीरज सों मांस उपाना,
मांस नपाकी तुम खाई।
अपनी देखि करत नहिं अहमक,
कहत, हमारे बड़न किया;
उसका खून तुम्हारी गरदन
जिन तुमको उपदेस दिया। [कबीर

१४

मक्का मदिना द्वारका, बद्री औ केदार;
बिना दया सब झूठ है, कहै मलूक बिचार।
[मलूकदास

१५

माँस-माँस सब एक है, मुरगी हिरनी गायँ;
आँख देखि जे खात है, ते नर नरकहिं जायँ।
[कबीर

१६

मुरगी मुल्ला से कहै, जिबह करत है मोहिं;
साहिब लेखा माँगसी, संकट परिहै तोहिं।
[कबीर

१७. दया हिन्दू के हृदय मे नही, मेहर मुसलमान के दिल मे नही;
तब तो इन दोनो को ही
चौरासी लाख योनियो की सैर करनी पडेगी !

१८. रोजा भी रखते है, नमाज भी पढते है ।
और ज़ोर-जोर से अजान लगाते है ।
और शाम होते ही मुर्गी ज़िबह करते है !
ऐसो को स्वर्ग भला कभी नसीब हो सकता है ?

१९. न, ऐसे को कभी मार्ग-दर्शक न बनाओ,
उससे तो बाबा, दूर ही रहो—
जो जीव-हत्या की तरफ तुम्हे प्रेरित करता है ।

२०. जिन्होने पराये मास का भक्षण किया,
उनका मास आज दूसरे चीथ-चीथकर खा रहे है ।

२१. साखियाँ और शब्द सुन-सुनकर भी
वे मनुष्य नरक जायँगे,—
जिनका हृदय दया-भाव से सूना है ।
क्या होता है ज्ञान का वेहद निरूपण करने से ?

२२. दीवान के हुक्म से ये प्यादे
वकरे मार-मारकर खा रहे है ।
ऐसे लोगो की मुश्के बाँधी जायँगी,
और ऊपर से यमदूतो की मार पडेगी,
उस दिन यह ज़ालिम जोर-जोर से चिल्लायँगे ।

१७

हिन्दू के दाया नहीं, मेहर तुरक के नाहिं;
कह 'कबीर' दोनो गये, लख चौरासी माँहि।

[कबीर

१८

रोजा तुरक नमाज गुजारैं,
बिसमिल बाँग पुकारैं;
उनकी भिस्त कहाँ ते होइहै
साँझै मुरगी मारैं।

[कबीर

१९

ऐसा मुरसिद कबहुँ न करिये,
खून करावैं तिसते डरिये।

[मलूकदास

२०

जिन्ह जस मांसू भखा पराया,
तस तिन्हकर लेइ औरन खाया।

[जायसी

२१

दयाभाव हिरदे नहीं, ज्ञान कथैं बेहद्द;
ते नर नरकहि जाहिंगे, सुनि-सुनि साखी-सब्द।

[कबीर

२२

लै फ़ुरमान दिवान का खसि प्यादे जे खाहिं;
बाँही बद्धे मारियहि, मारें दे कुरलाहिं।

[नानक

२३. जिन्होने दूसरो की आत्मा को पहचान लिया,
समझ लो, वे ससार-समुद्र से पार उतर गये ।

२४. दुनिया में जो भी प्राणी दुखी मिले,
उनका दु ख दूर करदो ।
दुनियाभर की दरिद्रता, लाओ, मुझे सौंप दो,
और सारा सुख जगत् मे बाँट दो ।

२५. जब सर्वत्र सब में तेरी ही आत्मा समाई हुई है,
तेरा ही राम हर घट में निवास कर रहा है,
तब अपनी ही तरह सबको सतोष ही देना चाहिए ।
साधुजनो का कर्तव्य ही यह है ।

२६. तेरा प्रियतम ही सब मे रम रहा है,
तो फिर क्यो किसीको दु ख देता है ?
सब प्राणियो के अन्दर एक ही आत्मा का वास है,
दूसरा तो जगत् में कोई है ही नही ।

२७. जिन आँखो से मनुष्य अपने आपको देखता है,
उन्ही आँखो से यदि वह दूसरो को देखने लगे,
तो दूसरा कोई दृष्टि मे आयगा ही नही,
और न कोई किसीको दु ख देगा ।

२३

जिन पर-आतम चीन्हिया, ते ही उतरे पार।

[मलूकदास

२४

जे दुखिया संसार में, खोवो तिनका दुक्ख;
दलिद्दर सौंप मलूक को, लोगन दीजै सुक्ख।

[मलूकदास

२५

काहे को दुख दीजिए, घट-घट आतमराम;
'दादू' सब संतोषिए, यह साधू का काम।

[दादूदयाल

२६

काहे को दुख दीजिए, साईं है सब माँहि;
'दादू' एकै आतमा, दूजा कोई नाँहि।

[दादूदयाल

२७

ज्यों आपै देखै आप को, यों जे दूसर होइ;
तो 'दादू' दूसर नहीं, दु:ख न पावै कोइ।

[दादूदयाल

: १० :

"सो दरवेश खुदा का प्यारा"

१. वही साधुओ में सिरमौर है,—
जो सदा गोविंद का गुण-गान करता है,
राम को भजता है, विषयो को त्याग देता है,
अहंकार का जिसने दमन कर दिया है,
जो कभी असत्य नही बोलता,
दूसरो की निंदा नही करता,
दूसरो के दोषो पर जिसकी दृष्टि नही जाती,
जो केवल गुणो को ही ग्रहण करता है,
और जिसका मन सदा हरि के चरणो मे बसता है,
वही साधु-शिरोमणि है ।
जिसका किसी भी जीव के प्रति वैरभाव नही,
दूसरो की आत्मा को जो अपनी ही आत्मा के समान जानता है,
सब को सुख पहुँचाता है,
जो सर्वत्र समदृष्टि रखता है,
अहंता को जो बिलकुल भूल गया है,
'स्व' और 'पर' में जो भेद-दृष्टि नही रखता,
और जिसने अपने को सर्वथा विकार-रहित कर दिया है,
जो सदा सत्य बोलता है,
आत्म-विचार में जो निरन्तर निमग्न रहता है,
वही साधु-शिरोमणि है ।
जो सर्वत्र भयरहित है,
जो किसी विषय मे आसक्त नही होता,
ऐसा संत ससार मे कोई बिरला ही मिलेगा ।

: १० :

"सो दरवेश खुदा का प्यारा"

१

सोई साधु-सिरोमनी गोविंद-गुन गावै,
राम भजै विषया तजै, आपा न जनावै।
मिथ्या मुख बोलै नहीं, परनिंदा नाहीं;
औगुन छाँडै गुन गहै, मन हरिपद माहीं।
निर्वैरी सब आतमा, परआतम जानै;
सुखदायी समता गहै, आपा नहि आनै।
आपा-पर-अंतर नहीं, निर्मल निज सारा;
सतवादी साँचा कहै लौलीन विचारा।
निर्भय भजि न्यारा रहै, काहू लिपत न होई;
'दादू' सब संसार में, ऐसा जन कोई।

[दादूदयाल

२. दरवेश उसीको कहना चाहिए,—
जो साईं से मिलने की खातिर
अतर के दर्द पर आशिक हो गया है।
जो मुझे बताता है कि,
राम इस तरह रीझता है।
जो प्रभु से लौ लगाकर बैठ जाता है,
और किसीपर कभी क्रोध नही करता।
जो पाँचो तत्वो से अपने को अलिप्त रखता है,
उसी दर्दमद दरवेश को अल्लाह प्यार करता है।
जो प्यासो को प्यार से पानी पिलाता है,
—मुहम्मदने जिसे खुदा की बहुत बडी बदगी कहा है—
और जो भूखो को रोज खाना खिलाता है,
उस दरवेश की भेट स्वामी से शीघ्र हो जाती है।
जिस फकीरने प्रभु के विरह में
अपने कर्मो का लेखा-जोखा बेबाक कर दिया है,
उसे स्वामी के द्वार पर रोकने-टोकनेवाला कौन है ?
जिसने क्रोध का परित्याग कर दिया है,
जिसने जीते जी अपनी अहता को मार डाला है,
—जो 'मरजीवा' हो गया है—
उसकी वन्दना तो इजराइल जैसे देवदूत भी करते है,
जो दूसरो के दुख को अपना ही दुख समझता है,
मैं तो उसीको सच्चा दरवेश मानता हूँ।

३. वही सच्चा पीर है, वही पूरा सिद्ध है,
जो दूसरो की पीर को समझता है।
जिसे दूसरे की पीर का पता नही,
वह नामधारी पीर तो काफिर है।

२

दरदमंद दरवेश कहावै,
जो मोहि राम की रीझ बतावै।
साहेब की लौ बैठै लाई,
काहू सो नहिं करै तमाई।
पाँच तत्व से रहै नियारा,
सो दरवेश खुदा का प्यारा।
जो प्यासे को देवै पानी;
बडी बंदगी मोहमद मानी।
जो भूखे को अन्न खियावै,
सो शिताब साहब को पावै।
जो फ़कीर ऐसा कोइ होय,
फिरै बेबाक न पूछै कोय।
छोडै गुस्सा जीवत मरै,
तेहि इज्रायल सिजदा करै।
अपना-सा जो सबका जानै,
'दास मलूका' ताको मानै।

[मलूकदास

३

'मलुका' सोई पीर है, जो जानै परपीर;
जो परपीर न जानही, सो काफिर बेपीर।

[मलूकदास

४. जो निर्भय हो प्रभु का भजन करता है,
सदा सर्वत्र अनासक्त रहता है,
ऐसा मनुष्य ससार मे कोई बिरला ही मिलेगा।

५. जैसा कहता है वैसा ही करता है,
जो राग और द्वेष से सुलझ गया है,
एक रत्ती न जो घटता है, न बढता है,
सदा सर्वथा एकरस रहता है,
और इस प्रकार जो अपने आपको 'स्ववश' मे रखता है,
वही सच्चा साधु है।

६. जो मनुष्य दुख को दुख नही समझता,
जो सुख और स्नेह के वश नही होता,
जिसे कही कोई भय नही,
सोना और मिट्टी का ढेला जिसकी दृष्टि मे समान है,
वही सच्चा साधु है।
जिसे न निन्दा से दुख होता है, न स्तुति से सुख,
लोभ, मोह और अभिमान जिसके पास नही फटकते,
हर्ष और शोक से जो अलिप्त रहता है,
मान-अपमान में जो भेद नही देखता, वही सच्चा सन्त है।
सारी आशाओ और इच्छाओ का जिसने त्याग कर दिया है,
जो जगत् से निरीह हो गया है,
काम और क्रोध जिसे छूते भी नही,
'ब्रह्म का निवास' उसी गुणातीत के हृदय में है।
साधना की इस युक्ति का परिचय उसीको मिला,
जिसपर कि गुरुदेवने अनुग्रह किया;
वह सन्त गोविन्द के चरणो में इस तरह लवलीन हो जायगा,
जिस तरह पानी पानी में एकरस हो जाता है।

४

निरभै भज न्यारा रहै, काहू लिपत न होई,
'दादू' सब संसार में ऐसा जन कोई।

[दादूदयाल

५

जैसी कहै करै पुनि तैसी, राग-द्वेष निरुवारै;
तामें घटै बढ़ै रतियो नहि, यहि विधि आप सँभारै।

[कबीर

६

जो नर दुख में दुख नहि मानै;
सुख सनेह अरु भय नहि जाके,
कंचन-माटी जानै।
नहि निंदा नहि अस्तुति जाके,
लोभ-मोह-अभिमाना;
हर्ष-सोक तें रहै नियारो,
नाहि मान-अपमाना।
आसा मनसा सकल त्यागकै
जग तें रहै निरासा;
काम क्रोध जेहि परसै नाहिन,
तेहि घट ब्रह्म-निवासा।
गुरु-किरपा जेहि नर पै कीन्हीं,
तिन यह जुगति पिछानी;
'नानक' लीन भयो गोविंद सो,
ज्यो पानी सँग पानी।

[नानक

७. जीवन सफल तो तब है,
कि जबतक जीवित रहे, हरि का भजन करता रहे,
और परोपकार में अपने मन को पिरोदे;
और जब मरे तो ऐसी जगह मरे,
कि किसीको पता भी न चले,
शरीर पशु-पक्षियो के खाने के काम आ जाये।

८. हिंदू की करनी एक ओर है, मुसल्मान की दूसरी ओर;
किंतु साधु का मार्ग तो दोनो के बीच मे है,
सन्तो की, बाबा, राह ही निराली है।

९. 'फकीर' नाम की श्रेष्ठता तो केवल भजन के कारण है;
मगर फकीर कैसा ?
जो क्षमाशील हो, संतोषी हो, सरलचित्त हो,
जो दूसरो के दुख-दर्द को जानता हो,
दूसरो की पीर को पहचानता हो।

१०. भगवान् उसीके पास बसते है,
जिसने परधन और परस्त्री का परित्याग कर दिया है।

११. चाहे गृहस्थ हो, चाहे भेषधारी साधु—
जिसके दिल मे कपट नही, पक्षपात नही,
बाहर और भीतर जिसका एकरूप है,
वही सच्चा संत है।

१२. जिसकी आत्मा में सदा संतोष-ही-संतोष है,
जिसके वचन निर्मल निर्विकार है,
वही सच्चा साधु है,
उसका दर्शन और स्पर्श करते ही
हृदय मे आनन्द का स्रोत उमड़ पडता है।

७

हरि भज साफल जीवना, पर-उपकार समाइ;
'दादू' मरना तहँ भला, जहँ पसु-पंछी खाइ।

[दादूदयाल

८

करनी हिंदू-तुरक की अपनी-अपनी ठौर;
दुहुँ बिच मारग साध का, संतों की रह और।

[दादूदयाल

९

भजन ते उत्तम नाम फकीर;
छमा सील संतोष सरलचित,
दरदवत परपीर।

[भीखा

१०

परधन परदारा परिहरी,
ताके निकट बसै नरहरी।

[नामदेव

११

'दरिया' लच्छन साधु का, क्या गिरही क्या भेख;
निष्कपटी निरपच्छ रहि, बाहर-भीतर एक।

[दरिया

१२

साध संतोषी सर्वदा, निर्मल जाके बैन;
ताके दरस रु परस तें, जिय उपजै सुख-चैन।

[कबीर

१३. अपने कर्मों को ऐसा ही साधु जला सकता है—
जो अपने आत्माराम को एक पल भी नही भूलता,
दुनिया की बुराई-भलाई सब अपने सर पर ले लेता है।
जो किसीकी टीका-टिप्पणी की पर्वा नही करता,
कुत्ता कितना ही भूँके, हाथी अपनी चाल नही छोडता—
जगत् की निन्दा पर ध्यान नही देता;
और ध्यान दे क्यो ?
जबकि वह निराकार नाथ की शरण ले चुका है।
जो सदा प्रभु के भजन मे मगन रहता है,
वही सच्चा साधु है।
दुनिया उसके भेष पर हँसती है।
हँसा करे, उसे इसकी कोई पर्वा नही,
वह उसकी निन्दा को हृदय में स्थान ही नही देता।
वह तो राम-नाम के जहाज पर चढकर
ससार-समुद्र पार कर जाता है।

१४. वही परमज्ञानी साधु है, जो विष को अमृत बना लेता है,
आग (क्रोध) को पानी (अक्रोध) में परिणत कर देता है,
और जिसने कुटिल को सरल बना लिया है।

१५. फकीरी का जो सिर्फ बाना धारण करते है,
वे अपना मन काबू मे नही रख सकते।
किंतु, जो अपने दिल को फकीरी के रग मे रँग लेते है,
उनके वश मे तो स्वय ईश्वर भी हो जाता है।

१६. साधु और शूरमा के लिए न कब्र चाहिए, न स्मशान;
इन्हे तो खुला मैदान ही शोभा देता है।

१३

ऐसा साधू कर्म दहै;
अपना राम कबहुँ नहिं बिसरै,
बुरी-भली सब सीस सहै।
हस्ती चलै भूँसै बहु कूकर,
ताका औगुन उर न गहै;
वाकी कबहूँ मन नहिं आनै,
निराकार की ओट रहै।
'दरिया' राम भजै जो साधू
जगत भेष-उपहास करै,
वाका दोष न अंतर आनै,
चढ़ नाम-जहाज भवसिंधु तरै।

[दरिया

१४

विष का अमृत कर लिया, पावक का पाणी;
बाँका सूधा कर लिया, सो साध बिनाणी।

[दादूदयाल

१५

भेष फकीरी जे करै, मन नहिं आवै हाथ;
दिल फकीर जे हो रहै, साहिब तिनके साथ।

[मलूकदास

१६

साधु सूर सोहै मैदाना;
उनको नाहीं गोर मसाना।

[दादूदयाल

१७ ऊँचा साधु उसीको समझना चाहिए,
जो अपने अन्तर मे अहता को स्थान नही देता,
मन के विकारो को नष्ट कर जो निर्गुण-नाम जपता है ।
जो दूसरो की निंदा से दूर रहता है,
परस्त्री पर दृष्टि नही डालता,
और दूसरो के धन का अपहरण नही करता ।
जिन कर्मों से ईश्वर और जीव के बीच अतर पडता है,
उन कर्मो से जो हमेशा बचता है, वही ऊँचा साधु है ।
एक क्षण भी जो हृदय से राम को नही भुलाता,
राम का जो सदा सामीप्य ही चाहता है,
हरि-चर्चा ही जिसका एकमात्र विषय है,
जो किसी वाद-विवाद मे नही पडता;
किसी जीव के प्रति जिसके हृदय मे द्वेष नही,
त्याग और वैराग्य ही जिसकी परमसपत्ति है,
वही सत जगत् मे निर्भय है,
उसे किसी भी प्रकार का भय नही ।
जो कौवे * के समस्त कर्मो को छोडकर
हस† की अवस्था प्राप्त कर लेता है ।
जो तृष्णा और आशा मे आग लगा देता है, उसीकी साधु बुद्धि है ।
जो जगत् से अनासक्त होकर रहता है,
विषय-भोगो से जिसनें अपना मन हटा लिया है ।
उसीपर सरजनहार रीझता है,
और उसे अपना सेवक बना लेता है ।

---

* अविवेकी, विषयी

† विवेकी, जीवन्मुक्त

१७

परम साध हैं सोइ जो आपा ना थपै,
मन के दोष मिटाय नाम निर्गुण जपै।
परनिंदा परनारि द्रव्य नाहीं हरै,
जिन चालन हरि दूर बीच अंतर परै।
छिन नहिं बिसरै राम ताहि निकट तकै,
हरि-चरचा बिन और बाद नाहीं बकै।
सब जीवन निर्वैर त्याग-वैराग लै,
तब निर्भय ह्वै संत भाँति काहू न भै।
काग-करम सब छोड़ होय हंसा-गती,
तृष्णा आस जलाय सोइ साधू मती।
जगसूं रहै उदास, भोग चित ना धरै,
जब रीझै करतार दास अपना करै।

[चरनदास

१८ मैं तो अब अपने अलख स्वामी के हाथ बिक गया हूँ,
मुझ दीवाने फकीर को तो, बाबा,
अब अपने शरीर की भी सुध नही।

१९ ईश्वर उसीको मिलता हैं, जो सब पर दया करता है।
मन में सदा धर्मभाव रखता है,
और दूसरो के दुख को अपना-सा दुख समझता है।

२० जिस घट के अन्दर रामरूपी दीपक जल रहा है,
वहाँ कभी अज्ञान-अधकार प्रवेश नही करता,
उस परमज्योति के प्रकाश मे
सारा जगत् दृष्टिगोचर होता रहता है।

२१ गाँठ मे जो द्रव्य नही बाँधता, काम-वासना मे जिसका प्रेम नही,
मन और इद्रियो को जिसने अचचल कर दिया है,
और दैहिक गुणो का परित्याग,
उसीको स्थितप्रज्ञ सत कहना चाहिए।

२२ जिसके हृदय मे केवल हरि का ही वास है,
दूसरी किसी वस्तु के लिए स्थान ही नही—
वही भक्त है, वही साधु है, वही सिद्ध है,
और वही सब मे सिरमौर है।

२३ सत तो इस जगत् मे उस देश से उतरा है,
जिस देश मे हमारा प्रीतम प्रभु बसता है।
तो चलो, उससे अपने स्वामी के समाचार पूछे।

१८

कहै मलूक, अलख के अब हाथ बिकाना;
नाहीं खबर वजूद की मैं फकीर दिवाना।

[मलूकदास

१९

दाया करै धरम मन राखै,
घर में रहै उदासी;
अपना-सा दुख सबका जानै,
ताहि मिलै अबिनासी। [मलूकदास

२०

जिहि घट दीपक राम का, तिहि घट तिमिर न होइ;
उस उजियारे जोति के, सब जग देखै सोइ।

[दादूदयाल

२१

ग्रन्थ न बाँधै गाँठडी, नहि नारी सूं नेह;
मन इन्द्री इस्थिर करै, छाँड़ि सकल गुण देह।

[दादूदयाल

२२

सोइ जन साधू सिद्ध सो, सोइ सकल सिरमौर;
जिहि के हिरदे हरि बसै, दूजा नाहीं और।

[दादूदयाल

२३

साधू जन उस देस का, आया यहि संसार;
दादू उससूं पूछिए, प्रीतम के समचार।

[दादूदयाल

२४. सतजन विषय-रस से अलिप्त रहते है,
शील और गुणो की खान होते है ।
उन्हे दूसरो का दुख देखकर दुख, और सुख देखकर सुख होता है।
सब में समभाव रखते है,उनका शत्रु जगत् मे पैदा ही नही हुआ।
अभिमान उन्हे स्पर्श भी नही करता,
वैराग्य-निधि उनकी परमसपत्ति होती है ।
लोभ, क्रोध, हर्ष और भय को वे अपने पास फटकने भी नही देते ।
हृदय उनका परमकोमल होता है,
दीनो पर वे सदा दया रखते है,
मन, वचन और कर्म से माया-रहित होकर
मेरी भक्ति मे निरत रहते है;
सबको मान देते है, पर स्वय मान नही चाहते,
[भरत से राम कहते है—]
ऐसे प्राणी मुझे प्राणो के समान प्रिय होते है ।
निष्काम होकर वे मेरे नाम-स्मरण में लगे रहते है;
उन्हे शान्ति, विरक्ति, विनय और प्रसन्नता का स्थान कहना चाहिए।
शीतलता, सरलता और मैत्री उनकी सपत्ति होती है,
ब्रह्मवेत्ताओ के चरणो में वे प्रीति रखते है—
क्योंकि धर्म की उत्पत्ति इसी ब्राह्म प्रीति से होती है ।
जिसमे ये सब लक्षण पाये जाते है,
उसे निश्चय ही सदा सत समझना चाहिए ।
सत कभी शम, दम, नियम और नीति से विचलित नही होते,
उनके मुहँ से कभी कठोर वचन नही निकलता ।
निन्दा और प्रशसा दोनो जिनकी दृष्टि में समान है,
मेरे चरणो में जिनका एकान्त ममत्व है,
गुणो और आनन्द की राशि ऐसे सत
मुझे प्राणो के समान प्यारे है ।

२४

विषय-अलंपट सील-गुनाकर;
पर दुख दुख, सुख सुख देखें पर।
सम अभूतरिपु विमद विरागी;
लोभामरख हरख भय त्यागी।

कोमल चित दीनन्ह पर दाया;
मन वच क्रम मम भगति अमाया।
सर्बाहि मानप्रद आपु अमानी;
भरत प्रानसम मम ते प्रानी।

विगतकाम मम नाम-परायन;
सांति विरति विनयी मुदितायन।
सीतलता सरलता मइत्री;
द्विजपद-प्रीति धरम-जनयित्री।

ये सब लच्छन बसहिं जासु उर;
जानहु तात संत संतत फुर।
सम दम नियम नीति नहिं डोलहिं;
परुष बचन कबहूँ नहिं बोलहिं।

निंदा अस्तुति उभय सम, ममता मम पदकंज;
ते सज्जन मम प्रानप्रिय, गुनमंदिर सुखपुंज।

[तुलसी

२५. काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य—
इन छ मनोविकारो को जिन्होने जीत लिया है,
पापो से मुक्त, और कामनाओ से जो रहित है;
स्थिरमति, असग्रही, पवित्रात्मा और परमसुखी,
अनतज्ञानवान, इच्छा-विमुक्त और मिताहारी है;
जो सत्य को ही मूलतत्त्व मानते है,
जो शब्ददर्शी, विद्वान और योगी है,
वही सच्चे सत है, सतो के यही लक्षण है।
जो सतत जाग्रत रहते है,
दूसरो को मान देते है, पर स्वय मान के इच्छुक नही;
जो धैर्यवान और भक्तिमार्ग के परमप्रवीण पथिक है।
अपनी प्रशसा सुनकर जो सकोच करते है,
किंतु दूसरो के गुणो को सुनकर हर्षित होते है,
उन्हीको सत कहना चाहिए।
जो सब मे समभाव रखनेवाले और स्वभाव के शीतल है,
जो नीति को नही छोडते, और सरलस्वभाव है,
और जिनका सब से प्रेम है,
जिनके हृदय मे श्रद्धा है, क्षमा है, मैत्री और आनद की भावना है,
जो सदा भगवान् के चरणो में प्रीति रखते
और माया के वन्धनो से विमुक्त है,
उन्हीको सत कहना चाहिए।
जिनमे विरक्ति और विवेक है,
जो विनयी और विज्ञानी है,
और जिन्हे वेदो और पुराणो का यथार्थ ज्ञान है,
जो किसीसे दभ, अभिमान और उद्धतता नही करते,
और भूलकर भी कुमार्ग पर पैर नही रखते,
वही सच्चे सत है।

२५

षट विकार जित अनघ अकामा;
अचल अकिंचन सुचि सुखधामा ।
अमितबोध अनीह मितभोगी;
सत्य-सार कवि कोविद जोगी ।

सावधान मानद मद-हीना;
धीर भगति-पथ-परम-प्रवीना ।
निज गुन स्रवन सुनत सकुचाहीं;
परगुन सुनत अधिक हरषाहीं ।

सम सीतल नहिं त्यागहिं नीती;
सरल सुभाउ सर्बाहि सन प्रीती ।
श्रद्धा छमा मइत्री दाया;
मुदिता मम पद प्रीति अमाया ।

बिरति विवेक विनय विज्ञाना;
बोध जथारथ वेद-पुराना ।
दम्भ मान मद करहिं न काऊ;
भूलि न देहिं कुमारग पाऊ ।

[तुलसी

२६ बावा, जबसे यह संतो की संगति मिली,
तबसे 'परायापन' तो सारा भूल ही गया हूँ ।
न अब मेरा कोई वैरी है, न कोई पराया,
मेरा तो सभी के साथ मेल बैठ जाता है ।
प्रभुने जो भी किया वह अच्छा ही किया,
यह सद्बुद्धि आज मुझे संतो से प्राप्त हुई है ।
सब में मेरा ही प्यारा प्रभु रम रहा है,
सर्वत्र उसीको देख-देखकर मै प्रफुल्लित हो रहा हूँ ।

२७ साधु तो देखी हुई कहता है,
वह कोई सुनी-सुनाई बात नही कहता ।

२८ दुःख और सुख को जो समदृष्टि से देखता है,
जिसपर न हर्ष का असर होता है, न शोक का,
और जो परोपकार मे निरत रहता है,
और कामना से मुक्त होगया है,
क्षोभ-संताप जिसके मन मे पैदा नही होता,
वही सच्चा साधु है ।

२९. जगत् में जिसका कोई वैरी नही,
निष्काम बुद्धि को जिसने ग्रहण कर लिया है,
प्रभु से जिसका अटूट प्रेम है,
विषयो से जो अलिप्त रहता है,
वही सच्चा संत है, साधुओ का यही मत है ।

३०. जिसके दिल पर न मान असर करता है, न अपमान,
किंतु दूसरो को जो आदर देता है,
ज्ञान का उपदेश जो उसीको करता है,
—जो कि ज्ञान-प्राप्ति की आशा में रहता है—
वही सच्चा साधु है ।

२६

बिसरि गई सब तात पराई;
जबते साध-संगति मैं पाई।
ना कोई बैरी नाहि बेगाना,
सकल सग हमरी बनि आई।
जो प्रभु कीन्हों सो भल मान्यों,
एहि सुमति साधू ते पाई।
सब महँ रमि रहिया प्रभु एकहि,
पेखि-पेखि 'नानक' बिगसाई। [नानक

२७

साधु पुरुष देखी कहै;
सुनी कहै नहि कोय। [दादूदयाल

२८

दुख-सुख एकसमान है, हरष-सोक नहिं व्याप;
उपकारी निःकामता, उप जैछोह न ताप। [कबीर

२९

निरबैरी निःकामता, स्वामी सेती नेह;
विषया से न्यारा रहै, साधन का मत येह। [कबीर

३०

मान-अपमान न चित धरै, औरन को सनमान;
जो कोई आसा करै, उपदेसै तेहि ज्ञान। [कबीर

३१ ज्ञानी कभी अभिमान नही करता,
वह सब से प्रेम रखता है,
वह सत्य का उपासक और परोपकारी होता है,
और दूसरो के लिए उसके हृदय मे सदा आदरभाव रहता है।

३२ साधु क्या मिला,
हमें तो साधु के रूप में स्वय ईश्वर ही मिल गया।
भेद-दृष्टि का लेश भी नही रहा।
मन से, वचन से और कर्म से हम अनुभव करते हैं कि,
साधु और ईश्वर एक ही रूप है।

३३ तू हरि से प्रेम मत कर,
तू तो हरिजन से प्रीति जोड,
हरि के हाथो तू अधिक-से-अधिक
धन-सपत्ति और देश की प्रभुता ही पायगा।
पर हरिजन तो तुझे खुद हरि को ही दे देंगे।

३४ सिंहो के कही झुड-के-झुड नही मिला करते,
न हसो की पक्तियाँ देखने मे आती है,
और न लाल बोरियो मे भरे बिकते है,
इसी तरह साधु लोग जमात बनाकर नही चला करते।

३१

ज्ञानी अभिमानी नहीं, सब काहू से हेत;
सत्यवान परस्वारथी, आदर-भाव सहेत ।

[कबीर

३२

साध मिले साहिब मिले, अन्तर रही न रेख;
मनसा वाचा कर्मना, साधू-साहिब एक ।

[कबीर

३३

हरि से जनि तू हेत कर, कर हरिजन से हेत;
माल-मुलक हरि देत हैं, हरिजन हरि हीं देत ।

[कबीर

३४

सिंहो के लेहँडे नहीं, हंसों की नहिं पाँत;
लालों की नहिं बोरियाँ, साध न चलै जमात ।

[कबीर

: ११ :

"मुसल्मान, जो राखै ईमान"

१. मुसल्मान हम उसे कहते है, जो ईमान की रक्षा करता है,
अल्लाह की आज्ञा मानता, और सबको सदा सुख पहुँचाता है।
जिसने दया का दामन पकड़ रखा है,
जो हमेशा शीतलता का सचार करता है,
किसीको दु ख की आग से जलाता नही,
जो न मुर्दार को खाता है, न जिंदा को हलाल करता है;
हर घडी जो अल्लाह की बदगी मे
और अपनी आकबत बनाने में लगा रहता है,
उसीको धर्मनिष्ठ मुसल्मान समझो।
जिसने सत्य और सतोष को दिल में ऊँची जगह दे रखी है,
जो सदा सत्य-पथ पर चलता है,
लोक-परलोक के रास्ते को सँवारता रहता है,
उसके लिए तो हमेशा ही स्वर्ग का द्वार खुला हुआ है।
वह खुदा पर ईमान लानेवाला मुसल्मान मोमदिल होता है,
वही अपने मालिक को पहचान सकता है।
जो न किसीपर कभी जुल्म ढाता है,
और न हराम का खाता है—
वही सच्चा मोमिन स्वर्ग के अदर प्रवेश करता है।

२. प्रेम की तो माला जपता हूँ,
और दिल के अदर नमाज़ पढ लिया करता हूँ;
अब तो उसी प्रियतम के दर्शन के लिए
जगह-जगह की खाक छानता फिरता हूँ।

"मुसल्मान, जो राखै ईमान"

१

मुसलमान, जो राखै ईमान,
साईं का मानै फरमान ।
सारों को सुखदाई होइ,
मुसलमान करि जानों सोइ ।
मुसलमान मेहर गहि रहै,
सबको सुख किसकूं नहिं दहै ।
मुवा न खाइ, जीवत नहिं मारै,
करै बन्दगी, राह संवारै ।
सो मोमिन मन में करि जाणि;
सत्त सबूरी वैसे आणि ।
चालै सांच संवारै बाट,
तिसकूं खुले बिहिस्त के पाट ।
सो मोमिन मोमदिल होइ,
साईं को पहिचाणै सोइ ।
जोर न करै, हराम न खाइ,
सो मोमिन बिहिस्त में जाइ ।

[दादूदयाल

२

तसबी फेरौं प्रेम की, दिल में करौं निमाज;
फिरौं सगल दीदार को उसी सनम के काज ।

: रैदास

३. न मुझे अपने कर्मों के चिट्ठे का पता है,
और न नमाज़ पढ़ना ही जानता हूँ।
रोज़ा क्या चीज़ है, यह भी मालूम नही;
और अज़ान देना तो तभी से भूल गया हूँ,
जिस दिन कि इस दिल के अदर स्वामी को खोज लिया।

४. जिसने इश्क का दामन नही पकडा,
उसके नमाज पढने से क्या, और पूजा करने से क्या ?

५. जिसके दिल मे कपट का कचरा भरा हुआ है, उसके वज़ू करनें,
और मसजिद मे सौ-सौ बार सर झुकाने से क्या फायदा ?
उसका नमाज़ पढ़ना बेकार है—
और काबे मे जाकर हज करने से भी क्या होता है ?

६. दरवेश वही—जिसने कि अपनी आत्मा का दर्शन पा लिया,
और वही सच्चा मुसलमान है।
जिसका आवागमन छूट गया है,
जो न मरता है, न जीवन-धारण करता है,
वही हमारा प्यारा मित्र है।

३

तीजी और नमाज न जानूं,
ना जानूं धरि रोजा,
बांग-जिकर तब ही तें बिसरी
जब तें यह दिल खोजा।

[रैदास

४

जिसके इश्क आसरा नाहीं,
क्या निमाज, क्या पूजा ?

[रैदास

५

उजू पाक किया मुहँ धोया,
क्या मसजिद सिर नाया।
दिल में कपट, निमाज पढ़े क्या,
क्या हज्ज काबे जाया ?

[रैदास

६

सोइ दरवेस दरस निज पायो,
सोई मुसलिम सारा है।
आवै न जाय, मरै नहिं जीवै,
'यारी' यार हमारा है।

[यारी

७. मुल्ला वह, जो मन का निग्रह करने मे लगा रहता है,
दिन-रात जिसकी काल-चक्र के साथ भिडत रहती है,
जो काल-चक्र का मान मिट्टी मे मिला देता है,
उस मुल्ला को मै हमेशा वदना करता हूँ।

८. जो ईश्वर के रग मे रँगा हुआ है,
वही काजी है, वही मुल्ला,
और वही धर्मनिष्ठ मुसलमान है;
वही चतुर है, और वही जगत् में सब तरह से भला है।

७

सो मुल्ला जो मनसूं लरै,
अहनिसि काल-चक्र सूं भिरै।
काल-चक्र का मरदै मान,
ता मुल्ला कूं सदा सलाम।

[कबीर

८

सोई काजी मुल्ला सोई,
मोमिन मूसलमान।
सोइ सयाना सब भला,
जो राता रहमान।

[दादूदयाल

: १२ :

"सो काफ़िर, जो बोलै काफ़"

१. जिनके हृदय में न दया है, न प्रेम,
और दिल जिनका वज्र-सा कठोर है
उन काले दिलवालो को काफिर ही कहना चाहिए।
अल्लाह के धर्मनिष्ठ बन्दे तो और ही है।

२. काफिर कौन ?
जो ईश्वर की हस्ती को असत्य ठहराता है,
और अपने दिल को जो साफ नही रखता।
प्रभु से जिसकी कोई पहचान नही,
सारा कपट-कचरा जिसके अन्दर भरा हुआ है।
जो ईश्वर की आज्ञा नही मानता—
कहता है, 'कहाँ है तुम्हारा ईश्वर ?'
ऐसे मनुष्य को काफिर ही कहना चाहिए।
जो अपने दिल में विवेक को जगह नही देता,
और बड़े गर्व से अपनी छाया को देख-देखकर चलता है।
जो ज़ुल्म करता है, गरीबो को सताता है,
जिसके दिल मे दीन-दुखियो के लिए दर्द नही,
सिरजनहार से जिसका प्रेम नही,
अपने नश्वर शरीर पर जो भारी गर्व करता है,
भला, इन बातो से कभी स्वामी से भेंट हो सकती है ?
दूसरे के धन पर हमेशा जिसकी नीयत रहती है,
ज़ोर-ज़ुल्म कर-कर जो कुटुम्ब का धन खाता है
वह काफिर निश्चय ही नरक-लोक की यात्रा करेगा।

: १२ :

"सो काफ़िर, जो बोलै काफ़"

१

मेहर मुहब्वत मन नहीं, दिल के बज्र कठोर;
काले काफिर ते कहिय, मोमिन मालिक और ।

[दादूदयाल

२

सो काफिर, जो बोलै काफ,
दिल अपणा नहिं राखै साफ़ ।
साई को पहिचानै नाहीं ।
कपट-कूड़ सब उस ही माहीं ।
साईं का फरमान न मानै,
'कहाँ पीव' ऐसे करि जानै,
मन आपणे में समझत नाहीं ।
निरखत चलै आपणी छाहीं ।
जोर करै, मिसकीन सतावै,
दिल उसके में दरद न आवै ।
साईं सेती नाहीं नेह,
गरब करै अति अपनी देह ।
इन बातन क्यो पावै पीव,
परवन ऊपर राखै जीव ।
जोर-जुलम करि कुटुंब सूं खाइ,
सो काफिर दोजख में जाइ । [दादूदयाल

: १३ :

"साधो, सहज समाधि भली"

१. न चढाने को फूल-पत्ती तोडता हूँ,
न किसी देवता को पूजता हूँ,
सहज समाधि में स्थित
मैं तो सदा श्रीहरि की सेवा-बदगी करता रहता हूँ।

२. और मदिरो मे तो धुँधली-सी पूजा दिखती है,
वहाँ देवता ही दृष्टि नही आता।
पर हमारा देवता तो प्रत्यक्ष दीख रहा है;
यह अगमदेव बोलता है, चलता है,
और खाता-पीता भी है।
जहाँ भी देखता हूँ, ठाकुरद्वारे नजर आते है
और नित्य ही वहाँ अपने देवता की सेवा-पूजा करता हूँ।
जिस पूजा से मेरा देवता प्रसन्न होता है,
उसकी विधि मैं अच्छी तरह जानता हूँ।
भक्ति-भाव से स्नान कराता हूँ,
स्नेह का चदन लगाता हूँ,
और बडी नम्रता से मधुर वचनो के पुष्प
उसके चरणो पर चढाता हूँ।
उसे मै हर घडी प्रसन्न रखता हूँ,
और वह भी मुझे, हर क्षण दर्शन देता रहता है,
मैं बारबार उसकी बलैयाँ लेता हूँ।
यह सहज सुख मुझे आठो पहर मिलता रहता है।

"साधो, सहज समाधि भली"

१

तोड़ूं न पाती, पूजूं न देवा;
सहज समाधि करूँ हरि-सेवा। [रैदास

२

और देवल जहँ धुंधली पूजा,
देवत दृष्टि न आवैं;
हमरा देवत परगट दीखैं,
बोलैं-चालैं खावैं।
जित देखौं तित ठाकुरद्वारे,
करौं जहाँ नित सेवा;
पूजा की विधि नीके जानौं,
जासूं परसन देवा।
करि सन्मान अस्नान कराऊँ,
चंदन नेह लगाऊँ;
मीठे वचन पुष्प सोई जानो,
ह्वै करि दीन चढ़ाऊँ।
परसन करि-करि दर्सन पाऊँ,
वारवार वलि जाऊँ;
चरनदास सुकदेव* वतावैं,
आठ पहर सुख पाऊँ। [चरनदास

*शुकदेव चरणदास के गुरु थे।

३. बाबा, मेरी तो यह सहज समाधि ही अच्छी ।
सतगुरु का यह प्रताप ही कहना चाहिए—
जिस दिन से यह सहज अवस्था जागृत हुई,
दिन-दिन समाधिगत शाति बढती ही गई ।
जहाँ-जहाँ घूमता-फिरता हूँ,
उसे मै तीर्थ-प्रदक्षिणा मानता हूँ,
जो भी करता हूँ वह सब प्रभु-सेवा ही है ।
सोता हूँ तब मानो साष्टाग प्रणाम करता हूँ,
आत्मदेव को छोड और किसी देवता को मै पूजता ही नही ।
मेरे हरेक बोल में राम का नाम गूँजता है,
जो भी सुनता हूँ वह सब मेरे लिए हरि-स्मरण है,
जो खाता-पीता हूँ वह सब आत्मदेव की पूजा ही है ।
क्या बस्ती और क्या वीरान,
एक ही दृष्टि से सबको देखता हूँ,
द्वैत की सारी भावना मैने नष्ट कर दी है ।
न अब आँखें मूँदता हूँ, न कान बन्द करता हूँ,
अपने आत्मदेव को मै जरा भी कष्ट नही देता ।
खुली आँखो अपने प्रियतम को पहचान लेता हूँ
और हँस-हसकर उसका सुदर मुखडा देखा करता हूँ ।
निरतर ध्वनित होनेवाले शब्द में मेरा मन रम गया है,
और विकारमूलक वासनाओ का त्याग कर दिया है ।
ऐसी सहज समाधि लग गई है कि,
उठते-बैठते कभी भग नही होती ।
यह मेरी 'उन्मनी' अवस्था की स्थिति है,
इसका मैने यह प्रत्यक्ष वर्णन किया है ।
सुख-दुःख से परे जो आत्मा का परमपद है,
उसीमें मै अब रम गया हूँ ।

३

साधो, सहज समाधि भली।
गुरु-प्रताप जा दिन सो जागी,
दिन-दिन अधिक चली।
जहँ-जहँ डोलौं सो परिकरमा,
जो कछु करौं सो सेवा;
जब सोवौं तब करौं दंडवत,
पूजौं और न देवा।
कहौं सो नाम, सुनौं सो सुमिरन,
खावौं-पिवौं सो पूजा;
गिरह-उजाड़ एकसम लेखौं,
भाव मिटावौं दूजा।
आँख न मूँदौं कान न रूँधौं,
तनिक कष्ट नहिं धारौं;
खुले नैन पहिचानौं हँसि-हँसि,
सुंदर रूप निहारौं।
सबद निरंतर से मन लागा,
मलिन वासना त्यागी;
उठत-बैठत कबहुं नहिं छूटै,
ऐसी तारी लागी।
कह कबीर, यह उनमुनि रहनी,
सो परगट करि गाई;
दुख-सुख से कोइ परे परमपद,
तेहि पद रहा समाई।

[कबीर

४. राम, मै तुम्हारी पूजा करने तो आया हूँ,
पर तुम्हारे चरणो पर चढाऊँ क्या ?
मुझे अनूठे फल-फूल तो कही मिलते ही नही।
अत अब तुम्हारी मानसी पूजा ही करूँगा,
जिसमें धूप-दीप सब मानसिक ही होगा।
मन में ही महज स्वरूप की सेवा करूँगा।
नही जानता कि—
तुम्हारा पूजन-अर्चन कैसे किया जाता है।
और मेरी गति ही क्या है !

४

राम, मैं पूजा कहा चढ़ाऊँ ?
फल अरु फूल अनूप न पाऊँ।
मन ही पूजा, मन ही धूप,
मन ही सेऊँ सहज सरूप।
पूजा-अरचा न जानूँ तेरी,
कह रैदास, कवन गति मेरी।

[रैदास

: १४ :

"बातों ही पहुँचौ नहीं"

१. 'कथनी' खाँड की तरह मीठी मालूम देती है,
और 'करनी' ? जैसे जहर की गोली !
किन्तु यह विष अमृत हो जाता है—
यदि कथनी को छोडकर मनुष्य करनी मे लग जाये ।

२. कोरी कथनी से कोई लाभ नही,
इसे तो तू छोड ही दे; तू तो करनी मे मन लगा ।
बगैर पानी पिलाये क्या किसीकी प्यास बुझी है ?

३. खुद को तो पानी भी नसीब नही होता,
दूसरो को दूध बख्शने चले है !
अपना मन तो स्थिर नही,
दूसरो को आप धीरज बँधा रहे है !

४. मुख से जैसी बात निकले,
वैसा ही यदि आचरण किया जाय,
तो उसके निकट तो सदा ही सतगुरु का निवास है,
सत्य के उस उपासक को वह क्षणमात्र में निहाल कर देता है ।

५. रास्ता चलते कोई गिर पडे,
तो उसका कोई दोष नही ।
यात्रा तो मुश्किल उसके लिए है—
जो चलता ही नही,
बैठा हुआ बाते बना रहा है ।

: १४ :

"बातों ही पहुँचौ नहीं"

१

कथनी मीठी खाँड़-सी, करनी विष की लोय;
कथनी तजि करनी करै, विष से अमरत होय।

[कबीर

२

कथनी-बदनी छाँड़िके, करनी से चित लाय;
नरहिं नीर प्याये बिना, कबहूँ प्यास न जाय।

[कबीर

३

पानी मिलै न आपको, औरन बकसत छीर;
आपन मन निश्चल नहीं, और बँधावत धीर।

[कबीर

४

जैसी मुखते नीकसै, तैसी चालै चाल;
तेहि सतगुरु नियरे रहै, पल में करै निहाल।

[कबीर

५

मारग चलते जो गिरै, ताको नाहीं दोस;
कह 'कबीर' बैठा रहै, ता सिर करडे कोस,

[कबीर

६. दूसरों को उपदेशने में तो बहुत सारे लोग प्रवीण हैं,
किन्तु वैसा आचरण करनेवाले तो बहुत ही थोडे है।

७. कहते तो कुछ है, और करते कुछ और ही है;
ऐसो से मैं बहुत डरता हूँ, जिनकी बात का कोई ठीक-ठिकाना नही।

८. 'मिश्री-मिश्री' कहने से
किसीका मुहँ कभी मीठा हुआ है ?
अरे, मुहँ तो तभी मीठा होगा,
जब उसमें मिश्री की डली डाली जायगी।
चलने से दूर रहकर, केवल बातो से कोई घर पहुँचा है ?
राहगीर तो वही चतुर कहा जायगा,
जिसने चुपचाप अपना रास्ता पकड़ लिया।

९. बिना करनी के कथनी ऐसी है,
जैसे बिना चन्द्रमा के रात;
या, साहस के बिना शूरवीर,
अथवा, स्त्री के बगैर गहना।
यह तो बाँझ स्त्री का पालनें मे
कल्पित बालक का झुलाना हुआ !
जहाँ करनी ही नही,
वहाँ उद्दिष्ट वस्तु कहाँ से आयगी ?
कितने ही दभी बिना करनी के
आत्म-ज्ञान का कोरा निरूपण कर-कर मर गये।
किन्तु सन्तोने कहा और तदनुसार आचरण किया—
यही कारण है कि वे 'ब्रह्मवत्' हो गये।

६

पर-उपदेस-कुसल बहुतेरे,
जे आचरहिं ते नर न घनेरे। [तुलसी

७

'दादू' कथणी और कुछ, करणी करै कुछ और;
तिनथें मेरा जिव डरै, जिनका ठीक न ठौर।
[दादूदयाल

८

मिसरी-मिसरी कीजिए, मुख मीठा नाहीं;
मीठा तबही होइगा, छिटकावै माहीं।
बातो ही पहुँचौ नहीं, घर दूरि पयाना;
मारग पंथी उठि चलै, 'दादू' सोइ सयाना। [दादूदयाल

९

करनी बिन कथनी इसी,
ज्यो ससि बिन रजनी;
बिन साहस ज्यूँ सूरमा,
भूषन बिन सजनी।
बाँझ झुलावै पालना,
बालक नहिं माहीं;
वस्तु विहीना जानिए,
जहँ करनी नाहीं।
बहु डिंभी करनी विना,
कथि-कथि करि मूए;
संतो कथि करनी करी,
हरि के सम हूए। [चरनदास

१०. प्रभु का नाम-स्मरण छोडकर ये कमबख्त पडित,
वेद-पुराणो के वाद-विवादो मे
वैठे-वैठे व्यर्थ दिमाग खाली कर रहे है !

११. स्याही और कागज के भरोसे,
भला जन्म-मरण से किस तरह छुटकारा मिल सकता है ?
राम की शरण लिये वगैर
भ्रातिजनित विकारो से मुक्ति मिल नही सकती ।

१२. हमसे करनी तो कुछ होती नही,
हम तो कोरे कथन-शूर है,
हमारे नजदीक तो कथनी ही है,
करनी तो हमसे कोसो दूर है ।

१३. यह मनुष्य पद-रचना करता है,
और ज्ञान-वैराग्य की साखियाँ भी कहता है;
किंतु विषय-विष नही छोडना चाहता ।
अब 'ब्रह्म-रस' मिले तो कैसे ?
पानी विलोने से कही घी निकलता है ?

१४. दीपक, बत्ती और तेल की कथा कहने से
अन्धकार का निवारण नही हुआ करता ।

१५. अँधेरी रात में दीये की वाते करने से
किसीके घर का अंधकार दूर नही हुआ ।

१०

'दादू' निवरे नाम बिन, झूठा कथैं गियान;
बैठे सिर खाली करैं, पंडित वेद पुरान।

[दादूदयाल

११

मसि कागज के आसरे, क्यों छूटै संसार;
राम बिना छूटै नहीं, 'दादू' भर्म-विकार।

[दादूदयाल

१२

करनेवाले हम नहीं, कहने कूँ हम सूर;
कहिबा हम थैं निकट है, करिबा हम थैं दूर।

[दादूदयाल

१३

पद जोड़ै साखी कहै, विषै न छाँडै जीव;
पानी घालि बिलोइए, क्योंकरि निकसै घीव।

[दादूदयाल

१४

बातों तिमिर न भाजई, दीवा बाती तेल।

[दादूदयाल

१५

निसि गृह मध्य दीप की बातन्ह,
तम निवृत्त नहिं होई।

[तुलसी

: १५ :

"निंदक बाबा बीर हमारा"

१. बावा, निंदक तो मेरा प्यारा भाई है—
बेचारा बिना ही पैसे-कौडी के काम करता रहता है।
करोडो कर्मों के पाप काटकर फेंक देता है,
और बिना ही मुआवजा लिये मेरा सारा काम सँभालता है।
खुद डूबकर दूसरो को तारता है,
पार उतारनेवाला मेरा वह ऐसा प्रिय बन्धु है।
मेरा निंदक प्यारा जुग-जुग जिये!
राम, तुम से मेरी यही विनती है।
मैं तो बेचारे निंदक को परोपकारी ही कहूँगा—
मेरी निंदा कर-कर मेरा वह उपकार ही करता है।

२. आँगन में कुटिया बनवाकर
निंदक को तो सदा अपने ही पास रखना चाहिए;
बिना ही पानी और बिना ही साबुन के
सहज मे वह मन का मैल धो देता है।

३. हे राम, निंदक को कभी मौत न आये—
बेचारा कितना परोपकारी है,
अपने ऊपर खुद गदगी ओढकर
हमे साफ और निर्मल कर देता है।

: १५ :

"निंदक बाबा बीर हमारा"

१.

निंदक बाबा वीर हमारा;
बिनहीं कौडी बहै विचारा ।
कर्म कोटि के कसमल काटै,
काज सँवारै बिनहीं साटै ।
आपण डूबै और को तारै;
ऐसा प्रीतम पार उतारै ।
जुग-जुग जीवो निंदक मेरा;
रामदेव, तुम करौं निहोरा ।
निंदक बपुरा पर-उपकारी;
'दादू' न्यंदा करै हमारी ।

[दादूदयाल

२

निंदक नियरे राखिए, आँगन कुटी छवाय;
बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करै सुभाय ।

[कबीर

३

निंदक बपुरा जिन मरै, पर-उपकारी सोइ;
हमकूँ करता ऊजला, आपण मैला होइ ।

[दादूदयाल

४. निंदक को देखते ही मैं प्रणाम करता हूँ—
"महाराज! तुम धन्य हो,
तुमने प्रभु के भक्तो का अहकार-मल साफ कर दिया।
ससार मे जन्म लेकर तुमने दूसरो का उद्धार ही किया,
भक्तो के अतर का मैल तुमने मुफ्त ही धो दिया।
तुम्हारे प्रताप से मैं जगत् मे प्रसिद्ध हो गया,
सारी दुनिया मे तुमने सुयश का बीज बो दिया।
मेरे निंदक के मर जाने से
मेरी बहुत हानि हुई,
और मैं उस दिन बहुत रोया।

४

देखिकै निंदकहिं करौं परनाम मैं,
धन्य महराज, तुम भक्त धोया।
किया निस्तार तुम आइ संसार में,
भक्त कै मैल बिनु दाम खोया।
भयो परसिद्ध परताप से आपके,
सकल संसार तुम सुजस बोया।
दास पलटू कहै, निंदक के मुए से,
भया अकाज मैं बहुत रोया।

[पलटूदास

: १६ :

"साँच बराबर तप नहीं"

१. नाम तो अल्लाह का ही सच्चा है
केवल उसीको 'सत्य' समझना चाहिए।
स्थिरबुद्धि से तू उसी सतनाम की खिदमत कर;
यही एक प्रामाणिक बात है।

२. सत्य के समान दूसरा तप नही,
और असत्य के समान पाप नही;
जिसके हृदय मे सत्य बसता है,
उस हृदय में समझो, खुद प्रभु का निवास है;

३. दिल अगर सच्चा है, तो प्रभु के दरबार में
कर्मों का हिसाब देना बहुत सहल है;
फिर वहाँ तेरा कोई पल्ला पकड़नेवाला नही।

४. सत्य का जल पाकर
दयाधर्म का वृक्ष नित्य बढता ही जाता है,
और वह सतोष से फूलता-फलता है;
बड़भागी है वे, जो उसका अमृत-फल खाते है,

५. यदि तू सदा सुख और शाति चाहता हो,
तो यह महामत्र सीख ले—
"तू मन तो अपना 'सत समर्थपुरुष' में लगाये रख,
और जगत् के कर्त्तव्य कर्म करता जा।"

६. असत्य को तू छोड दे,
और अपना आश्रय-स्थान सत्य मे बनाले।

: १६ :

"साँच बराबर तप नहीं"

१

साँचा नाँव अल्लाह का, सोई सत करि जाणि;
निहचल करिले बंदगी, 'दादू' सो परवाणि।

[दादूदयाल

२

साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप;
जाके हिरदे साँच है, ता हिरदे हरि आप।

[कबीर

३

लेखा देना सहज है, जो दिल साँचा होय;
साँई के दरबार में, पला न पकरै कोय।

[कबीर

४

दया-धर्म का रूखड़ा, सत सों बधता जाइ;
संतोष सों फूलै-फलै, 'दादू' अमरफल खाइ।

[दादूदयाल

५

सत समरथ तें राखि मन, करिय जगत का काम;
'जगजीवन' यह मंत्र है, सदा सुक्ख-बिसराम।

[जगजीवन

६

झूठे को तजि दीजिए,
साँचे में करि गेह। [चरनदास

७. आदि में सत्य था, युगादि में सत्य था,
सत्य आज भी है,
और आगे भी सत्य रहेगा।

८. सत्य का रास्ता तो बिल्कुल सीधा है,
जो सच्चा हो, वह इस रास्ते से सीधा चला जाये;
हमें तो दिखाई यह दिया है, कि
सत्य के मार्ग पर कोई झूठा नहीं चल सकता।

९. बिना सत्य के इस जीव को कभी संतोष नहीं हो सकता;
ईश्वर का दर्शन सत्य-संतोषी ही कर सकता है।

१०. हम तो, बाबा, 'सत्यनाम' के व्यापारी हैं।
कोई तो काँसा-पीतल लाद-लादकर लाते हैं,
और कोई लौंग-सुपारी का बनिज करते हैं,
पर हम तो स्वामी के सत-नाम की
पूरी खेप लादकर लाये हैं।
इस बनिज में कभी पूँजी में कमी नहीं आई,
और लाभ चौगुना होता है,
हाट-बाज़ार में न हमें ज़कात वसूलनेवाला रोक सकता है,
न हमारे रास्ते में किसी तरह का कोई डर या अंदेशा है।
मोती हमारे अंतर्घट में ही उपजते हैं,
और सुकर्मों से भंडार भरा रहता है।
सत-नाम का अनमोल माल लादकर हम बनिज करने जा रहे हैं।

११. हमारा स्वामी तो सच्चे के ही निकट रहता है,
झूठों से तो वह कोसों दूर है,
दिल में अगर सत्य प्रगट हो जाये,
तो स्वामी तो सदा हाज़िर ही है।

७

आदि सचु, जुगादि सचु,

है भी सचु 'नानक' होसी भी सचु।

[नानक

८

सूधा मारग सांच का, सांचा होइ सो जाइ;

झूठा कोई ना चलै,' 'दादू' दिया दिखाय।

[दादूदयाल

९

'दादू' देखै साईं सोई,

सांच बिना संतोष न होई।

[दादूदयाल

१०

हम सत्यनाम के बैपारी।

कोइ-कोइ लादै कांसा-पीतल, कोइ-कोइ लौंग-सुपारी;

हम तो लादा नाम धनी का, पूरन खेप हमारी।

पूंजी न टूटै नफा चौगुनी, बनिज किया हम भारी;

हाट जगाती रोक न सकिहै, निर्भय गैल हमारी।

[धर्मदास

११

'पलटू' नेरे सांच के, झूठे से है दूर;

दिल में आवै सांच जो, साहिब हाल हुजूर।

[पलटूदास

: १७ :

"भावै सौ-सौ गोते लाय"

१. गया जाने से बात खत्म नही होती,
वहाँ तू चाहे कितना ही पिंड-दान दिया कर।
बात तो तभी खत्म होगी,
जब तू खड़े-खड़े इस "मै" को लुटा देगा।

२. मक्का जाने से बात खत्म नही होती,
और गगा जाने से पाप नही छूटते,
चाहे तुम उसमे सैकडो गोते लगाओ—
जबतक तुमने अपने दिलो से आपा नही त्यागा,
तबतक यह आवागमन की बात खत्म होने की नही।

३. जिनके हृदय-गृह मे ईश्वर बसता है,
असत्य और कपट का जहाँ अश भी नही,
उनका दर्शन ही तीर्थ-स्नान है—
कहाँ का तुम्हारा पर्व, और कहाँ का गगा-स्नान ?

४. न तीर्थ जाता हूँ, न कोई व्रत-उपवास करता हूँ;
मुझे इसकी कोई फिक्र भी नही,
मुझे तो स्वामी, एक तुम्हारे चरण-कमलो का भरोसा है।
जहाँ-जहाँ जाता हूँ, तुम्हारी पूजा कर लेता हूँ;
तुम्हारे समान पूजनेयोग्य जगत् मे दूसरा और देवता नही।

: १७ :

"भावै सौ-सौ गोते लाय"

१

गया गयाँ गल्ल मुकदी नहीं,
भावैं कितने पिंड भराय;
'वुल्लेशाह' गल्ल ताईं मुकदी,
जब "मैं"नूं खड़याँ लुटाय।

[वुल्लेशाह

२

'वुल्ला' मक्के गयाँ गल्ल मुकदी नहीं,
जिचर दिलों न आप मुकाय;
गंगा गयाँ पाप नहिं छुटदे,
भावैं सौ-सौ गोते लाय।

[वुल्लेशाह

३

साहिब जिनके उर बसै, झूठ कपट नहिं अंग;
तिनका दरसन न्हान है, कहँ परवी फिर गंग।

[गरीबदास

४

तीरथ-बरत न करौं अँदेसा,
तुम्हरे चरनकमल क भरोसा।
जहँ-जहँ जाओ तुम्हरी पूजा,
तुम-सा देव और नहिं दूजा।

[रैदास

५. योग या यज्ञ से क्या बननेवाला है,
न तीर्थ, व्रत या दान ही कुछ काम देंगे;
भगवान् का भजन करो—
ओस की बूँदें चाटने से प्यास कही बुझती है ?

६. चला तो मैं तीर्थयात्रा को था,
पर बीच मे हो गया सन्तो का समागम ।
निकला तो था मैं एक ही मुक्ति की खोज मे,
पर यह तो मुझे अनत मुक्तियो का अनायास लाभ होगया ।

७. पानी और पत्थरो की काफी पूजा की,
पर इससे मेरा एक भी काम न सरा ।
अब तू अपनी काया का तो बना मदिर,
और प्रतिमा बना मनरूपी शालिग्राम की—
इस देवाराधन से ही तेरी साधना सफल होगी ।

५

जोग-जग्य ते कहा सरै तीरथ-व्रत-दाना
ओसै प्यास न भागिहै, भजिए भगवाना।

[नामदेव

६

'पलटू' तीरथ को चला, बीचे मिलिगे सन्त;
एक मुक्ति के खोजते, मिलिगई मुक्ति अनंत।

[पलटूदास

७

जल-पखान के पूजते, सरा न एकौ काम;
'पलटू' तन कर देहरा, मन करु सालिग्राम।

[पलटूदास

: १८ :

"कहुधौं छूत कहाँ ते उपजी ?"

१. पडितजी, मन मे समझ-बूझकर जरा देखो तो—
भला कहो तो सही, यह छूतछात पैदा हुई कहाँ से ?
जन्म इसका कही-न-कही हुआ ही होगा,
तभी तो तुमने इसे माना ।
पवन, वीर्य और रज के सबध से
घट* के अदर ही घट† शरीर मे परिवर्तित होकर बढता है ।
अनन्तर, अष्टदल कमल‡ से बालक पृथिवी पर आता है ।
[क्या ब्राह्मण, क्या चाडाल,
सबके जन्म की यही रीति है]
फिर यह छुआछूत आखिर कहाँ से पैदा हो गई ?
चौरासी लाख योनियो के शरीररूपी वर्तन
सड़-गलकर मिट्टी बन गये ।
ईश्वरने सबको एक ही पीढे पर बिठाया है,
भला अब बताओ, कौन-सा भाई अछूत हो गया ?
छूत से न तुम्हारा भोजन बचा है, न आचमन,
सच पूछो तो, सारी सृष्टि ही छूत से उत्पन्न है,
हाँ, छूत से यदि कोई बचा है,
तो केवल वही,
जिसके साथ माया नही है ।

---

*गर्भाशय †गर्भ ‡मणिपूरक, अर्थात् नाभिचक्र से नीचे

: १८ :

"कहुधौं छूत कहाँ ते उपजी?"

१

पंडित, देखहु मन महँ जानी ?
कहुधौं छूत कहाँते उपजी,
तबहि छूत तुम मानी ।
नादे-बिन्दे रुधिर के संगे,
घट ही महँ घट सपचै;
अष्टकवँल होय पुहुमी आया,
छूत कहाँते उपजै ?
लख चौरासी नाना बासन,
सो सब सरि भो माटी;
एकै पाट सकल बैठाये,
छूत लेतधौं काकी ?
छूतहि जेवन, छूतहि अँचवन,
छूतहि जगत उपाया;
कहहि कबीर, ते छूत-विवर्जित,
जाके संग न माया ।

[कबीर

२. दूसरो का स्पर्श हो जाने पर तो
तुम पानी के छीटे शरीर पर छिडकते हो,
[या, सवस्त्र स्नान की सलाह देते हो]
पर तुम से नीच और दूसरा कौन है ?
इन गुणो (?) से तुम इतना अधिक अभिमान करते हो ?
अतिशय अभिमान से किसीका भला नही हुआ ।

३. पाँडेजी, आप जाति पूछकर पानी पीते है ?
[पर ज़रा तत्वो के स्वरूप का भी तो विचार करे]
जिस मिट्टी के घर मे आप बैठे हुए है,
उसमें सारी सृष्टि सड-गलकर समा गई है ।
पाँडेजी, जिस दूध को आप पी रहे है,
पता है, यह कहाँ से आया है ?
यह गाय की हड्डियो और मज्जे का स्पर्श करते हुए निकलता है ।
और आप मिट्टी को छूत लगा रहे है ! !
[किसीके मात्र छू देने से कही धरती अपवित्र हो सकती है ?]

२

और के छुए लेत हो सींचा,
तुमते कहो कौन है नीचा ?
ई गुन गरब करौ अधिकाई,
अधिके गरब न होय भलाई।

[कबीर

३

पाँडे, बूझि पियहु तुम पानी;
जिहि मटिया के घर महँ बैठे,
ता महँ सिष्टि समानी।
हाड़ झरी झरि गूद गरी गरि,
दूध कहाँ ते आया ?
सो लै पाँडे जेंवन बैठे,
मटियहि छूत लगाया !

[कबीर

: १६ :

"विविध"

१. जाऊँ कहाँ ? और कैसे जाऊँ ?
मुझे तो प्रेमरग घर ही मे लग गया है,
मेरा चित्त अब कही जाता ही नही,
मन मेरा पग हो गया है ।
एक दिन मन में कुछ ऐसी उमग उठी
कि खूब सुगन्धित चदन-चोवा लेकर
ब्रह्म-मदिर में, मैं ब्रह्म को पूजने चली,
पर सतगुरुने तो ब्रह्म का ठौर मन मे ही बता दिया ।
जहाँ भी जाऊँ, वहाँ जल और पाषाण दृष्टि आता है.
और तू सर्वत्र समान रूप से व्याप्त हो रहा है ।
वेद-पुराण सब उलट-पलटकर देख डाले,
अब कहाँ जाऊँ ?
जहाँ तू न हो, वही जाना चाहिए ।
पर तुझसे खाली जब कोई ठौर हो !
सतगुरु, मैं तुझपर कुर्बान हूँ,
मेरी तमाम विकट भ्रातियो को तूने काट डाला ।
धन्य ! मुझे 'ब्रह्म-रमण' की अवस्था प्राप्त हो गई;
कर्म-पाश को सतगुरु का शब्द-बाण ही काट सकता है ।

२ राँड़ वह नही कहलाती,
जिसका खाविंद चल बसा है,
राँड तो असल में वह है,
जिन्होने प्यारे कर्त्तार को भुला दिया है ।

: १६ :

"विविध"

१

कत जाइए, घर लागो रंगु,
मेरा चित न चलै मन भयउ पंगु।
एक दिवस मन भई उमंग,
घसि चन्दन चोवा बहु सुगन्ध।
पूजन चाली ब्रह्म-ठाईं,
सो ब्रह्म बतायो गुरु मनहि माँहि।
जहाँ जाइए तहँ जल-पखान,
तू पूरि रह्यौ है सब समान।
वेद-पुरान सब देखे जोइ,
वहाँ जाइए जहँ तू न होइ।
सतगुरु, मैं बलिहारी तोर,
जिनि सकल विकट भ्रम काटे मोर।
रामानन्द स्वामी रमत ब्रह्म,
गुरु का सब्द काटै कोटि करम।

[रामानन्द

२

रँडियाँ एह न आखियन, जिनके चलन भतार;
रँडियाँ सेई 'नानका', जिन बिसरिया करतार।

[नानक

३ वह गरम-गरम तंदूर में भूने जायेंगे,
और उनका मुहँ अगारो से भरा जायगा;
जो बनिये अनजान किसान-स्त्रियो को देखकर पासग मारते है।

४ जो असल ठिकाने पर पहुँच गये है,
उन सबने तो एक ही बात कही है,
सब तत्त्वदर्शियो का मत एक ही है,
और उनकी कौम भी एक है।

५ तुम तो उसी प्रभु का नाम सदा रटा करो
जो चीटी की भी आर्त्त पुकार सुन लेता है।
तुम उसे विश्वासपूर्वक भजो, वह जरूर सुनेगा,
हमारा स्वामी बहिरा नही है।

६ स्वामी, क्या कहूँ तेरी साहिबी को!
स्याह कहूँ या सफेद ?
मेरे मौला, अजब है, तेरी लीला
तू जल को स्थल मे बदल देता है,
और स्थल को जल में!

७. देवल तो इस दिल के अन्दर ही है,
उसी देवल मे तेरा देवता बैठा हुआ है।
प्रत्येक श्वास इस बात की साक्षी दे रहा है।
तू अपने उसी आत्मदेव की सेवा-बदगी कर।

८ वह सरजनहार स्वामी तो एक ही है,
ये इतने तमाम कर्त्तार कहाँ से आगये ?
यह तो निरी भ्रान्ति है,
टूटे हुए दर्पण के हरेक टुकडे मे सूरत तो वही दीखती है।

३

देखि अजाणाँ जट्टियाँ, पासँगु मुहणु किराड;
तत्ते तावण ताइयहि, मुहि मिलनीयाँ अँगियार।

[नानक

४

जे पहुँचे ते कहि गये, तिनकी एकै वाति;
सवै सयाने एकमत, उनकी एकै जाति।

[दादूदयाल

५

सुनत सिकार पिपील की, ताहि रटहु मन माहिं;
'दुलनदास' विस्वास भजि, साहिव वहिरा नाहि।

[दूलनदास

६

मौला, जल से थल करै, थल से जल करि देत;
साहिव, तेरी साहिवी, स्याम कहूँ की सेत।

[गरीबदास

७

दिल के अन्दर देहरा, जा देवल में देव;
हर दम साखीभूत हैं, करी तासुकी सेव।

[गरीबदास

८

एते करता कहाँ है, यहाँ तो साहिव एक;
जैसे फूटी आरसी, टूक-टूक में देख।

[ग़रीबदास

९. पापी का घर आग के बीचोबीच समझो;
वह सदा जलता-बलता ही रहता है,
पाप की आग यो बुझनेवाली नही।

१०. खट्टी-मीठी चीज़ें खा-खाकर
सदा स्वाद में ही चित्त लगाये रहा।
यह मूढ प्राणी इन विषय-स्वादो में ही रम गया,
प्रभु का नाम इसने कभी भूलकर भी न लिया!

११. भला, देखो तो मनुष्य की मूर्खता!
मन्दिरों में दुनियाभर के देवतो को पूजता फिरता है,
और देवीमाता की मनौती भी मनाता है,
पर प्रत्यक्ष निरजनदेव की सेवा-बन्दगी से बेखबर है!

१२ फकीर का भेप तो बना लिया,
पर असली भेदतक न पहुँच सका।
अमृत ले तो लिया,
पर प्रेम विषयो के विष से ही रहा।
जीवन सारा काम और क्रोध में ही गँवा दिया,
साधुओ के साथ बैठकर कभी राम का गुणगान न किया।
तिलक तो लगाता रहा, पर हृदय की जलन न गई,
और मालाएँ भी बहुत-सी लाकर पहन ली।
असली भेद का दाव भी मुझे पता चल जाय,
तो मै निरजनदेव का सच्चे दिल से ध्यान करने लगजाऊँ।

१३ बीच समुन्दर में, नाव में छेद होगया,
और सब आरोही डूबने लगे,—
अपना-अपना जी लेकर सब भाग गये।

९

पानी का घर अगिनी माहि;
जलत रहै मिटवै कब नाहि ।

[नामदेव

१०

खाटा-मीठा खाइ करि, स्वाद चित्त दीया;
इनमें जीव विलम्बिया, हरि-नाम न लीया ।

[दादूदयाल

११

पूजे देव दिहाड़िया, महामई मानै,
परगट देव निरंजना, ताकी सेव न जानै !

[दादूदयाल

१२

भेष लियो पै भेद न जान्यो,
अमृत लेइ विषै सो मान्यो ।
काम-क्रोध में जनम गँवायो,
साधु-संगति मिलि राम न गायो ।
तिलक दियो, पै तपनि न जाई,
माला पहिरे घनेरी लाई ।
कह रैदास, मरम जो पाऊँ,
देव निरंजन सत करि ध्याऊँ ।

[रैदास

१३

फूटी नाव समुंद्र में, सब डूबन लागे,
अपणा-अपणा जीव ले सब कोई भागे । [दादूदयाल

१४ जिस मनुष्य पर जीव-दया असर नही करती,
जो भूखे को आहार और प्यासे को पानी नही देता,
जो राम का नाम नही लेता,
और आत्मा के परमधाम को जो अपना विश्राम-स्थान नहीं बनाता,
धिक्कार है इस पृथ्वी पर ऐसे विमूढ प्राणी को !

१५. पहुँचे हुओं से ही वहाँ की बात पूछनी चाहिए,
वे सब एक ही बात कहेगे।
दुनियाभर के सतो का एक ही मत है—
ये बारहबाटी तो सब अधबीच के है।

१६ वहाँ कही न नरकलोक है न स्वर्गलोक,
यही, इसी लोक में राम है और यही रहमान।

१७. वेद और कुरान को क्यो झूठा कहते हो ?
झूठा तो वही है, जो इनपर यथार्थ विचार नही करता।

१८ मै तो हरि का गुण-गान करता हूँ,
और हिन्दू-मुसल्मान दोनो को यही सारतत्व समझाता हूँ।

१९. काजी वह, जो काया का यथार्थ विचार करता है,
जो दिन-रात 'ब्रह्म-अग्नि' को प्रज्वलित रखता है।
जो स्वप्न मे भी वीर्य-पात नही होने देता,
उस काजी को न वृद्धावस्था का भय है, न मृत्यु का।

१४

जीव की दया जेहि जीव व्यापै नहीं,
भूखे न अहार, प्यासे न पानी;
राम को नाम, निजधाम-विश्राम नहिं,
'धरनी' कह, धरनि पै धिक सो प्रानी। [धरनीदास

१५

जे पहुँचे ते पूछिए, तिनकी एकै बात;
सब साधो का एक मत, बिच के बारहबाट।
[दादूदयाल

१६

वहाँ न दोजख, भिस्त मुकामा,
यहाँ ही राम, यहीं रहमाना।
[कबीर

१७

वेद-कतेब कहो क्यूँ झूठा ?
झूठा, जो न बिचारैं।
[कबीर

१८

कहै कबीर, मैं हरि-गुन गाऊँ,
हिन्दू-तुरक दोउ समझाऊँ।
[कबीर

१९

काजी सो, जो काया बिचारै,
अहनिसि ब्रह्म-अगिनि परजारै।
सुपनेंहु बिंद न देई झरना,
ता काजी कूँ जरा न मरना। [कबीर

२० हम तो, भाई, राम का नाम लेकर पार हो गये,
डूबे तो ये पाँडे और ये पण्डित,
जो वेदो के विश्वास मे वेखवर बैठे रहे।

२१ मुझे और बकवास से मतलब नही—
अल्लाह की बात ही मेरे लिए सब कुछ है,
यह रौला कुछ तो विद्वानोने मचा रखा है,
और कुछ इन किताबोने झमेले मे डाल दिया है।

२२ मुल्ला और मसालची दोनो एक ही मत के है,
औरो को तो ये ज्ञान और प्रकाश देते है,
और खुद अज्ञान और अन्धकार मे फँसे रहते है।

२३. ये पुरोहित और ब्राह्मण तो अन्धे होगये है,
और काज़ी और मुल्ले ज्ञान की रेख से बिल्कुल कोरे है।

२४ मूर्तियाँ पूजते-पूजते हिंदू मर गये,
और मुसल्मान मर गये नमाज पढ-पढकर।
हिन्दू अपने मुर्दे को जलाते है,
और मुसल्मान दफनाते है;
पर तेरी थाह, तो इनमें से किसीको न मिली।

२५. यह सारी बकवास छोड दे,
तू तो अनहद ब्रह्म से ही प्रीति जोड।
अरे मूढ, औंधे घड़े पर पानी बरसाने से कोई लाभ ?

२०

हम तो राम नाम कहि उबरे;
वेद-भरोसे पांडे डूब मरे। [कबीर

२१

'बुल्ला' होर ने गलडियाँ,
इक अल्ला अल्ला दी गल्ल;
कुज रौला पाया आलमा,
कुज कागजाँ पाया झल्ल।
[बुल्लेशाह

२२

'बुल्ला' मुल्ला ते मसालची,
दोहायाँ इक्को चित्त;
लोका करदे चांनना,
आप हनेरे विच्च।
[बुल्लेशाह

२३

पाये मिस्सर अंधले, काजी मुल्ला कोर।
[नानक

२४

बुत पूजत हिन्दू मुये, तुरक मुये सिर नाई;
ओइ लै जारे, ओइ लै गाडे, तेरी गति दूहूँ न पाई।
[कबीर

२५

'दरिया' वहु बकवाद तज, कर अनहद से नेह;
औंधा कलसा ऊपरे, कहा बरसावै मेह।
[दरिया

२६ शास्त्रज्ञान की अहंतापूर्ण धूल सारे शरीर मे लिपट रही थी,
धन्य है सतगुरु को,
उन्होने एक ही शब्द से उसे तुरन्त उड़ा दिया ।

२७. दया के समान दूसरा कोई तप नही
आत्मदेव की पूजा दया के योग से ही होती है ।

२८ द्वेष-भाव मे बहुत बडा पाप है,
शरीर छूटने पर वैरभाव रखनेवाला नरक-वास करता है ।
हमेशा उसे अपने वैरी की ही याद रहती है,
यह द्वेषभाव भगवान् से प्रीति नही लगने देता ।

२९. मै कभी यह रहनी रहूँगा ?
कृपालु राम की कृपा से कभी सतो का स्वभाव प्राप्त कर सकूँगा ?
जो कुछ मिल जाय उसीमे सतुष्ट रहना,
और किसीसे कुछ पाने की इच्छा न करना,
ऐसा स्वभाव मेरा क्या कभी बनेगा ?
वह कितना अच्छा जीवन होगा, कि जब—
सदा परोपकार मे ही निरत रहूँगा,
इस नियम को मन से, वाणी से, और कर्म से निबाहूँगा ।
अत्यन्त असह्य कठोर वचन सुनकर उसकी आग मे न जलूँगा,
किसीसे मान-सम्मान पाने की इच्छा न करूँगा,
मन को समभावी और शीतल रखूँगा
दूसरो के गुणो का तो बखान करूँगा,
पर उनके दोषो को नही कहूँगा ।
शरीर-जनित चिन्ताओ को छोडकर
सुख और दु ख को समबुद्धि से देखूँगा ।
भला, वह सत-स्वभाव मुझे कब प्राप्त होगा, जब—
इस सत्य-मार्ग पर स्थित रहकर
अटल हरि-भक्ति प्राप्त कर सकूँगा ?

२६

रंजी सास्तर ज्ञान की, अंग रही लिपटाय;
सतगुरु एकहि सब्द से दीन्हीं तुरत उड़ाय। [दरिया

२७

दया बराबर तप नहिं कोई,
आतम-पूजा तासो होई। [चरनदास

२८

बैरभाव में औगुन भारी,
तन छूटै जा नरक मँझारी।
बैरी याद रहै मन माही;
हरिसों हेत लगन वे नाहीं।
[चरनदास

२९

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो;
श्री रघुनाथ कृपालु कृपा तें संत-सुभाव गहौंगो।
जथालाभ संतोष सदा, काहूसो कछु न चहौंगो;
परहित-निरत निरन्तर मन क्रम बचन नेम निबहौंगो।
परुष बचन अति दुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो;
बिगतमान, समसीतल मन, परगुन, अवगुन न कहौंगो।
परिहरि देह-जनित चिंता, दुख-सुख समबुद्धि सहौंगो;
'तुलसिदास' प्रभु यहि पथ रहि, अविचल हरिभक्ति लहौंगो।
[तुलसी

३० इस बावली दुनिया को समझाने से कोई लाभ ?
जरा देखो तो इसका पागलपन,
निकलता तो शरीर में चेचक का रोग है,
और ये बावले पूजने जाते हैं पत्थर के देवी-देवते !
३१ साधुओ और झूठे भेषधारियो में इतना अन्तर है,
जितना कि दिन और रात मे;
ये भेषधारी दुनिया की आशा लगाये रहते हैं,
और सच्चे साधुओ का प्रेम राम से रहता है,
एक काम-काचन के दास हैं, दूसरे राम के।
३२ नारी जगत् की जननी है,
जो विश्व का पालन-पोषण करती रहती है।
पर ये मूढजन राम से विमुख होकर
नारी की सदा निन्दा ही करते रहते हैं।
३३ क्या तो गृहस्थ और क्या विरक्त—
जिसे भी देखता हूँ उसे माया लगी हुई है,
बाहर-भीतर सबका यही हाल है,
माया से कोई अछूता नही बचा।
३४ तू उसे जगल मे क्यो खोजने जाता है ?
वह घट-घट-वासी सदा अलिप्त रहनेवाला स्वामी तो
तेरे रोम-रोम में समाया हुआ है।
जैसे फूल मे सुगन्ध बसती है,
और दर्पण में प्रतिबिम्ब,
उसी तरह प्रभु तेरे अन्दर ही निरतर बस रहा है।
भाई, तू उस प्रियतम को अपने घट मे ही खोज,
बाहर-भीतर सर्वत्र उसी प्रभु का वास है—
मुझे तो सतगुरुने यही ज्ञान बताया है।
अपने आत्मदेव को पहचाने बिना
भ्रान्ति की यह काई कभी दूर होने की नही

३०

'दरिया' बौरे जगत को, क्या कीजै समझाय;
रोग नीसरै देह में, पत्थर पूजन जाय।

[दरिया

३१

साध स्वांग में आंतरा, जैसा दिवस औ रात;
इनके आसा जगत की, उनको राम सुहात।

[दरिया

३२

नारी जननी जगत की, पाल-पोस दे पोष;
मूरख राम बिसार कर, ताहि लगावै दोष।

[दरिया

३३

कहा गृहस्थ, कहा त्यागी,
जेहि देखूं तेहि बाहर-भीतर
घट-घट माया लागी।

[दरिया

३४

काहे रे, बन खोजन जाई ?
सर्वनिवासी सदा अलेपा, तो ही संग समाई।
पुष्प मध्य ज्यों बास बसत है, मुकुर माहि जस छाईं;
तैसे ही हरि बसै निरन्तर, घट ही खोजे भाई।
बाहर-भीतर एकै जानौ, यह गुरु ज्ञान बताई;
जन 'नानक' बिन आपा चीन्हें, मिटै न भ्रम की काई।

[नानक

३५ बिना हरि-भजन के यह तेरा शृगार अच्छा नही लगता ।
तू क्या कहकर चला था, है कुछ याद ?
जगत् में जन्म लेकर तूने वैसा बर्ताव तो नही किया,
तू अपना किया सारा कौल करार भूल गया !
तेरे दिल मे सच्चा रग तो पैदा हुआ नही,
भगवे कपडे रँगकर फकीर का भेष बेशक तूने बना लिया !
बिना भजन के तेरी बुरी गति होगी—
यम के द्वार पर तुझे मुश्के बाँधकर ले जायँगे ।
मुझे तो बस एक सतगुरु का ही आसरा है,
और हरि के चरणो पर मेरा मस्तक है;
क्यो मैं कोई फिक्र करूँ ?

३६ तेरे सेवक का निभाव तभी होगा स्वामी !
जब तू इस तरह अपने जन पर दया करेगा—
ज्यो-ज्यो हम तुझसे सबन्ध तोडें, त्यो-त्यो तू उसे जोड़ता जाये;
हम तोड दे, पर तू न तोडे ।
हम तुझे भुला दे, पर तू हमे न भुलाये;
हम बिगाडते रहे, पर तू न बिगाडे ।
हम गलती करे, और तू सुधार दे;
हम तुझसे बिछड जायें,
पर तू आकर हमें गले से लगा ले ।
तुझे जो प्रिय है, वह हमारे पास नही है,
स्वामी, फिर भी तू मुझे अपना दीदार देता जा,
तेरे सेवक का निभाव इसी तरह होगा ।

३५

नीक न लागै बिनु भजन सिंगरवा।
का कहि आयो, हियाँ बरत्यो नाहीं,
भूलि गयल तोरा कौल कररवा।
साँचा रंग हिये उपजत नाहीं,
भेष बनाय रँग लीन्हों कपरवा।
बिन रे, भजन तोरी ई गति होइहै,
बाँधल जैबे तू जम के दुवरवा।
'दूलनदास' के साईं जगजीवन*
हरि के चरन पर हमरो लिलरवा।

[दूलनदास

३६

तौ निबहै जन सेवक तेरा,
ऐसैं दया करि साहिब मेरा
ज्यूँ हम तौरैं, त्यूँ तू जोरै,
हम तोरैं, पै तू नहिं तोरै।
हम बिसरैं त्यूँ तू न बिसारै,
हम बिगरैं, पै तू न बिगारै।
हम भूलैं, तू आनि मिलावै;
हम बिछुरैं, तू अंग लगावै।
तू भावै सो हममें नाहीं;
'दादू', दरसन देहु गुसाईं।

[दादूदयाल

*दूलनदास महात्मा जगजीवनदास के चेला थे।

सस्ता साहित्य मण्डल : 'सर्वोदय साहित्य माला' के प्रकाशन

१—दिव्य-जीवन ।≡)
२—जीवन-साहित्य १।)
३—तामिल वेद ॥।)
४—व्यसन और व्यभिचार ॥।=)
५—(अप्राप्य)
६—भारत के स्त्री-रत्न (तीन भाग) ३)
७—अनोखा (विक्टर ह्यूगो) १।=)
८—ब्रह्मचर्य-विज्ञान ॥।=)
९—यूरोप का इतिहास २)
१०—समाज-विज्ञान १॥)
११—खद्दर का सम्पत्तिशास्त्र ॥।≡)
१२—गोरों का प्रभुत्व ॥।=)
१३—(अप्राप्य)
१४—दक्षिण अफ्रिका का सत्याग्रह १।)
१५—(अप्राप्य)
१६—अनीति की राह पर ॥=)
१७—सीता की अग्नि-परीक्षा ।-)
१८—कन्याशिक्षा ।)
१९—कर्मयोग ।≡)
२०—कलवार की करतूत =)
२१—व्यावहारिक सभ्यता ॥)
२२—अँधेरे में उजाला ॥)
२३—(अप्राप्य)
२४—(अप्राप्य)
२५—स्त्री और पुरुष ॥)
२६—घरों की सफ़ाई ।=)
२७—क्या करें ? १॥=)
२८—(अप्राप्य)
२९—आत्मोपदेश ।)
३०—(अप्राप्य)
३१—जब अंग्रेज नहीं आये थे- ।)
३२—(अप्राप्य) ॥=)
३३—श्रीरामचरित्र १)
३४—आश्रम-हरिणी ।)
३५—हिन्दी-मराठी-कोष २)
३६—स्वाधीनता के सिद्धान्त ॥)
३७—महान् मातृत्व की ओर ॥।=)
३८—शिवाजी की योग्यता ।=)
३९—तरंगित हृदय ॥)
४०—नरमेध १॥)

४१—दुखी दुनिया ।=)
४२—जिन्दा लाश ॥)
४३—आत्म-कथा (गांधीजी) १॥)
४४—(अप्राप्य)
४५—जीवन-विकास १) १॥)
४६—(अप्राप्य)
४७—फाँसी ! ।=)
४८—अनासक्तियोग—गीताबोध (श्लोक-सहित) ।=)
४९—(अप्राप्य)
५०—मराठों का उत्थान-पतन २॥)
५१—भाई के पत्र १)
५२—स्वगत ।=)
५३—(अप्राप्य) १=)
५४—स्त्री-समस्या १॥)
५५—विदेशी कपड़े का मुक़ाबिला ॥=)
५६—चित्रपट ।=)
५७—(अप्राप्य)
५८—(अप्राप्य)
५९—रोटी का सवाल १)
६०—दैवी सम्पद् ।=)
६१—जीवन-सूत्र ॥)
६२—हमारा कलंक ॥=)
६३—बुद्बुद् ॥)
६४—संघर्ष या सहयोग ? १॥)
६५—गांधी-विचार-दोहन ॥)
६६—(अप्राप्य)
६७—हमारे राष्ट्र-निर्माता २॥)
६८—स्वतंत्रता की ओर— १॥)
६९—आगे बढ़ो ! ॥)
७०—बुद्ध-वाणी ॥=)
७१—कांग्रेस का इतिहास २॥)
७२—हमारे राष्ट्रपति १)
७३—मेरी कहानी (ज० नेहरू) २॥)
७४—विश्व-इतिहास की झलक (ज० नेहरू) ८)
७५—हमारे किसानों का सवाल ।)
७६—नया शासन विधान-१ ।॥)
७७—(१) गाँवो की कहानी ।॥)
७८—(२) महाभारत के पात्र-१॥)
७९—सुधार और संगठन १)
८०—(३) संतवाणी ।॥)
८१—विनाश या इलाज ।॥)
८२—(४) अंग्रेजी राज्य में हमारी आर्थिक दशा ।॥)
८३—(५) लोक-जीवन ।॥)

नवजीवन माला की पुस्तकें

१.	गीताबोध	(गांधीजी)	-)॥
२.	मंगल प्रभात	"	-)॥
३.	अनासक्तियोग	" =) श्लोक सहित	≡)
४.	सर्वोदय	"	-)
५.	नवयुवकों से दो बातें		-)
६.	हिन्द स्वराज्य	(गांधीजी)	≡)
७.	छूत-छात की माया	(आनंद कौसल्यायन)	-)
८.	ग्रामसेवा और गांधीजी	(गांधीजी)	=)
९.	खादी और गादी की लड़ाई	(विनोबा)	-)
१०.	आरोग्य संबंधी सामान्य ज्ञान	(गांधीजी)	।)
